Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

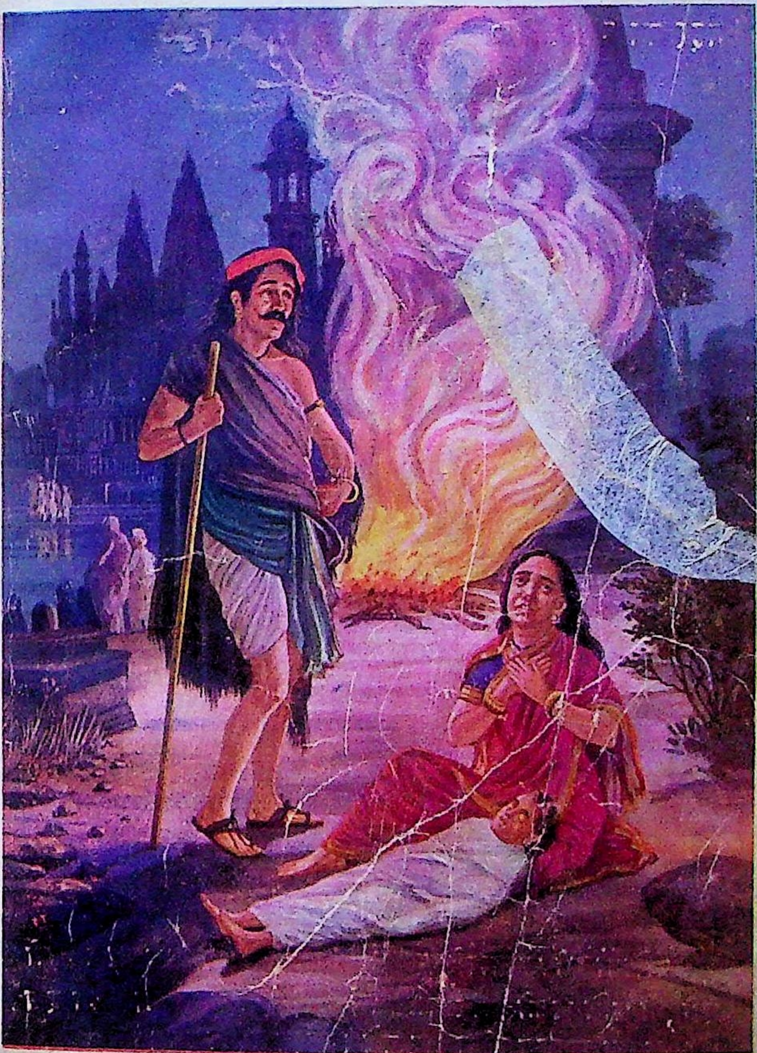

प्रकाशक-श्रीरामदास गुप्त

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जहर का प्याला

रंडियों की चालाकी, धूर्त्तता और कपटता तथा एक सती स्त्री की पति भक्ती और पातिव्रत यदि देखना हों तो आप इस पुस्तक को अवश्य मंगा कर पढ़े। मूल्य सचित्र १)

पता—उपन्यास-बहार-आफिस, काशी बनारस।

भारत-प्रेस, काजीपुरा, काशी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

॥ श्रीः ॥

आदर्श-दम्पति

सचित्र पौराणिक उपाख्यान ।

लेखक—

"विमल"

प्रकाशक—

शिवरामदास गुप्त

"उपन्यास-बहार" आफिस,

काशी (बनारस)

(प्रकाशक ने सर्व अधिकार स्वाधीन रखा है)

प्र॰ सवार] सं० १९७८ वि० [मूल्य १)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

10509
122

रत्नमाला सं० १०

सम्पादक–

शिवरामदास गुप्त,

काशी, बनारस।

Sri Pratap Singh
Library
Srinagar.

बाबू सूर्य्यनारायण जी
द्वारा जगन्नाथ प्रिंटिंग वर्क्स, राजघाट काशी में मुद्रित।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

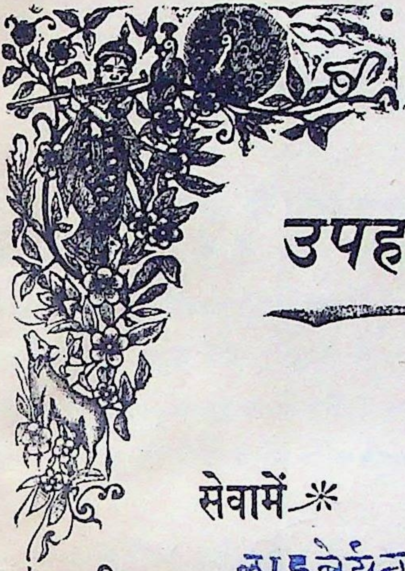

उपहार

सेवामें

श्रीयुत लाइब्रेयन

श्री प्रताप सिंह

श्रीनगर

(काश्मीर)

विनम्र—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वक्तव्य ।

हमारी गृहदेवियां ही भावी सन्तान की जननी हैं । अतएव यह निर्बिवाद है कि उन्हीं देवियों के हाथ उन भावी सन्तानों की आरम्भिक शिक्षा का बागडोर रहेगा । अस्तु, जब उनदेवियों का हृदय पवित्र भावों से लवा लव रहेगा तभी वे अपने उन सपूतों के हृदय में पवित्र भावों का वीज वपन कर सकेंगी । जिन पर देश जाति और समाज बड़ी बड़ी आशायें बाँधे हुए है ।

मनुष्य के लिये कर्तव्यक्षेत्र में अग्रसर होने के प्रथम आदर्श पुरुषों के पथ का अनुगामी होना आवश्यक कहा और समझा गया है । भारतीय देवियों के लिये वह आवश्यक और भी उपयोगी समझा गया है । इसी उद्देश्य को आगे रख मैं सती शैब्या के आदर्श और अनुकरणीय चरित्र को उनके आगे रखता हूँ ;आशा है, वे भी इस पावन चरित्र से यथेष्ट लाभ उठा कर औरों की पथ प्रदर्शिका होंगी ।

इस पुस्तक के लिखने में मुझे देवी भागवत तथा बंगभाषा की "शैब्या" नामक पुस्तक से सहायता मिली है-अतएव मैं उन लेखकों का कृतज्ञ हूँ ।

विनीत—

लेखक ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वीरकर्ण

लीजिये पाठक ! जिन महात्मा सूर्य—नन्दन वीरकर्ण की वीरता, धीरता, कर्त्तव्य—निष्ठता तथा दानशीलता की कीर्त्ति महिमा भारत के हरएक नर नारियों के मुंह से गाई जाती है, उन्हीं महाधनुर्धारी वीर पुरुष का आदर्श चरित्र आज आप लोगों के सम्मुख मनोहर उपाख्यान के रूप में रखा जाता है भला ऐसा कौन होगा जो "दानी—कर्ण" के नाम से अपरिचित हो। इनके चरित्रपाठ से कर्त्तव्यनिष्ठता की शिक्षा ग्रहण कर आप दानी तथा परोपकारी बन सकते हैं, कर्णार्जुन की भयंकर वीरता को देख आपका निर्बल हृदय भी सबल हो जायेगा, उसमें वीरता की लहर लहरा उठेगी। दान कैसा होता है, उसकी महिमा कितनी होती है, साहस और धैर्यता किसे कहते हैं, वीर लोग वचन का किस प्रकार प्रतिपालन करते हैं, आदि अनेक शिक्षाप्रद बातें इसके पढ़ने से आपको भली भाँति विदित होजावेंगी। साथ ही इस छोटी सी पुस्तक के द्वारा कुरुपाण्डव युद्ध का खाका भी बायस्कोप की तरह आप की नज़रों में खींच जायेगा मूल्य—सचित्र आईवेरी कागज—केवल का १।)

मंगाने का पता—शिवरामदास गुप्त,

उपन्यास-बहार-आफिस, काशी (बनारस)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एकलव्य

महाभारत के समय भीलजाति में "एकलव्य" नामका एक वीर बालक हो गया है, उसी भील वीरश्रेष्ठ की जीवन-कथा इस पुस्तक में लिखी गई है, यह जीवन घटना पूर्ण तो नहीं है, किन्तु अपना अभिष्ट सिद्ध करने में इस बालक ने जैसी दृढ़प्रतिज्ञता, आत्मविश्वास तथा चित्त की एकाग्रता दिखलायी है, वह सर्वदा प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय है। जो लोग अपना अभिष्ट प्राप्त करने तथा लक्षसाधन में अपनी आत्म-दुर्बलता प्रकट करते हैं, उनके लिए इस एकलव्य का चरित्रचित्रण एक अपूर्व उदाहरण है, अस्तु, आशा है, पाठकगण! इस छोटी सी पुस्तिका को पढ़ अपनी निर्दल आत्मा को सबल बनाने का प्रयत्न करेंगे। कई चित्रों से सुसज्जित पुस्तक का मूल्य केवल॥)

मंगाने का पता—शिवरामदास गुप्त,

उपन्यास-बहार आफिस, काशी (बनारस)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रवासिनी

इस पुस्तक में एक सुशिक्षिता स्त्री ने अपने जीवन का सच्चा वृत्तान्त अपनी ही लेखनी द्वारा बड़ी ही उत्तमता के साथ प्रकट किया है। आधुनिक पाश्चात्त्य सभ्यता (Modern reform) कितनी दूषित है और उसके अनुकूल भारतीय ललनाओं को शिक्षा देकर लेडीसाहबा बनाने का कैसा भयंकर परिणाम होता है। इत्यादि उपयोगी बातें बड़ेही अच्छे ढंग से दर्शाई गई हैं। मू० रंगीन टाइटल सहित १)

जहर का प्याला

यह उपन्यास नहीं, एक जीताजागता चित्र है। रंडियों की चालाकी, धूर्त्तता और कपटता, एक सती स्त्री की आदर्श पतिभक्ति, पति की निठुरता और साध्वी की पतिपूजा कलियुगी मित्रों की मित्रता और पुलिस की दोस्ती का नतीजा पढ़ दांतों तले उंगली दबानी पड़ेगी, सुन्दर चित्र दार कवर सहित का १)

राज दुलारी

पाठक! जिस प्रकार इसमें दिलचस्पी भरी हुई है, उसी प्रकार सुशिक्षा का भी समावेश किया गया है। मनुष्य चाहे कैसा ही चरित्र क्यों न हो, बुरी संगत से किस प्रकार पतित हो जाता है। पतित से पतित---पति की भी एक कुलवती सती-नारी किस प्रकार अपनी तपस्या से उसे पुनः पूर्व आसन दिखलाती है, इत्यादि बातों का यदि ज्वलंत उदाहरण देखना चाहें तो इसे अवश्य पढ़ें। मूल्य रंगीन टाइटिल सहित का १)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आदर्श-दम्पति ।

पहला परिच्छेद

सन्ध्या समय भगवान भास्कर पश्चिम पयोधि में पतित हो चुके थे, गगनमण्डल में नक्षत्र समूह टिम टिमाने लगे थे; निर्मल नील नभमण्डल में निशानाथ अपनी सुधामयी किरणों का विस्तार करते हुए मुसकुराने लग गये थे; कमलिनी अपने प्रेमी के वियोग से सम्पुटित हो चुकी थी, किन्तु कुमुदिनी अपने हृदयेश सुधाकर को प्रसन्न देख अपने को उन पर न्योछावर कर रही थी। पक्षी समूह अपने अपने निविड़ में प्रवेश कर रहे थे, उसी समय एक मनोरम उपवन के बीच सुन्दर तालाब की संगमरमर से बँधी हुई घाट पर तीन चार युवतियाँ आपस में हँस बोल रही थीं। उन युवतियों में से एक ने दूसरी नवोढ़ा का चिबुक उठा कर प्रेम पूर्वक कहा,—"बहिन, देखो, ताल में पद्मिनी दिनमणि दिवाकर के वियोग में कैसी मुर्झायी पड़ी है, किन्तु उसके निकटही कुमुदिनी चन्द्र-देव को देख देख कर खिलखिला रही है। ईश्वर के कार्यों को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कुछ पता नहीं चलता है। कहीं कोई रोता है तो वहीं कोई उसको देख कर हँसता है। कोई भोजन के लिए बिलपता है तो कोई भोजन करते करते ही मरता है।

दूसरी सखी बोली,-"सखी ! यह तो प्रकृति का नियमही है। औरों की बातों का उदाहरण तो दूर रहे, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण तो तूही दिखाती है। आज दो दिवस भी नहीं व्यतीत होने पाये हैं कि तू इतनी अधीरा और विह्वला हो रही है।"

पहली युवती मुसकुराती हुई बोली,—"सखी, माधवी, तूने मुझको किस प्रकार इसका प्रमाण बताया ? जरा साफ शब्द में तो कह ?

माधवी—मेरी आँख में धूल डालने की चेष्टा न कर आज दो दिवस हुए कि तेरी प्रेमा के पतिदेव आये हुए हैं, वह अपने प्यारे को पा कर प्रसन्न हैं और तू उसकी प्रसन्नता पर विह्वला हो रही है। सब्र कर; तेरे आराध्यदेव भी शीघ्र आने वाले हैं।

उस युवती की बातें सुन सबकी सब युवतियाँ हँस पड़ीं, प्रेमा लज्जित हो गयी; पहली युवती माधवी को हलका सा धक्का दे कर हँसती हुई बोली,—"तू बड़ी हसोड़ा है, चलो चलें; अब महारानी देवमंदिर से पूजा करके आयी होंगी।"

उसकी बातें पूरी होते न होते ही सब युवतियाँ उठ खड़ी हुई और उपवन से लगे हुये राजप्रासाद की ओर आपस में बातें करतीं हुई चलीं।

माधवी—इन दिनों महारानी को बहुत चिंताग्रस्त देखती हूँ। क्या महाराज के बियोग से ही वे ऐसी दिखाती हैं या और कुछ कारण है ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust

प्रेमा—नहीं, इसका कोई दूसरा कारण है।

माधवी—ऐसा कौन सा कारण है? प्रजायें भी तो महाराज के राज्यकाल में सब प्रकार से सुखी हैं; उनका साम्राज्य शांति का आगार हो रहा है।

मालती—सो तो है। यथार्थ में इनका जैसा धर्मज्ञ प्रजा पालक महाराज और कोई नहीं हुआ है, किन्तु इतना होने पर भी ईश्वर ने सन्तान के लिए इनकी (महारानी की) गोद खालीही रखी है। क्या महारानी शैव्या जैसी पतिव्रता आदर्श रमणी देखी या सुनी गयी है? उनका हृदय कैसा उदार और प्रशस्त है; दया और धर्म की तो वे प्रतिमूर्ति ही समझी जाती हैं, जैसा गुण है वैसा ही अपूर्व रूप भी है, मानो सोने में सुगन्ध है। आज ठीक पाँच वर्ष बीत गये कि उनका विवाह हुआ, पर अब तक उनको कोई सन्तान नहीं हुई है इसी से वे इतनी दुःखी हैं। महाराज भी पुत्र लाभार्थं ही तपस्या में तल्लीन हैं। आशा है, ईश्वर उनको मनोनीत वर प्रदान करेगें।

इसी प्रकार बातें करती हुई वे युवतियाँ रनिवास में आ उपस्थित हुईं। उधर महारानी शैव्या देवमंदिर से पूजा कर के आ चुकी थीं, उन युवतियों को आती देख उनका स्वागत करती हुई बोलीं,—"आज इतना विलम्ब क्यों हुआ?"

माधवी—उपवन के तड़ाग तीर में खड़ी खड़ी कुछ देर संध्याकाल के अनुपम दृश्य को देखती रही; बस इसी से कुछ बिलम्ब हो गया।

महारानी शैव्या—आज मेरा चित्त कुछ विशेष चञ्चल हो रहा है। चलें आप लोगों के साथ चल कर कुछ देर मैं भी उपवन की मनोरम शोभा को देख नेत्र को तृप्त करूँ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

 Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महारानी शैव्या इतना कहने के बाद ही उन युवतियों के साथ उद्यान की ओर चलीं, उनके पीछे पीछे दस पाँच सेविकायें भी चल पड़ीं।

वह उपबन राजप्रासाद के निकट ही था, कभी २ महारानी शैव्या अपनी सखियों के साथ मन बहलाने के लिए वहाँ जाया करती थीं, अनेक चतुर मालियों के द्वारा उपवन में फूल पत्तियों और लता पादपों की अच्छी प्रदर्शिनी लगी हुई थी। जगह जगह में संगमरमर के चबूतरे बने थे। उपवन की चारो ओर ऊँचे ऊँचे गुम्मजदार वृक्षों के समूह श्रेणी बद्ध खड़े दिखते थे। बीच में कई पगडंडियाँ इधर से उधर फैली दिखाती थीं। विविध प्रकार के पुष्प पादपों से क्यारियाँ हरी भरी दिखा रही थीं। लताकुञ्जों पर लतायें लहलहाती दिखा रही थीं, यथार्थ में वहाँ का दृश्य बरबस मनुष्यों के मन को आकर्षित कर लेने वाला था। उपवन के मध्य में निर्मल जल पूर्ण एक सुन्दर तड़ाग, जिसकी घाटें संगमरमर से बंधी थीं और जिसमें बिविध रंग की पद्मकुमुदिनी लगी हुई उसकी सौंदर्यता में सजीवता प्रदान कर रही थी।

महारानी शैव्या अपनी सखियों के साथ उपवन के उस मनमोदक दृष्य को देखती हुई उसी तड़ाग तीर में आ बैठीं उपवन से कुछ आगे हठ कर सरयू कल कल नाद करती हुई प्रवाहित हो रही थी।

चन्द्रदेव अपनी मनोहर मूर्ति का दर्शन दे चकोरी को आह्लादित कर रहे थे; निर्मल चन्द्रिका से वन की शोभा कुछ औरही बहार दिखा रही थी।

महारानी शैव्या कुछ देर उस तड़ाग के तीर पर बैठी उन युवतियों को स्त्रियों के कर्तव्य की शिक्षा देती रहीं, पश्चात

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वहाँ से राजप्रासाद को वापस लौटीं। वे युवतियाँ प्रायः नित्य उनके निकट आया करती थीं; क्योंकि स्त्रीशिक्षा के विषय की महारानी शैव्या से शिक्षा पाने का उन्हें चशका सा हो गया था और महारानी ने भी स्त्री-धर्म के विषय में नित्य कुछ न कुछ कहने का प्रणसा कर लिया था।

आज ठीक पाँच वर्ष बीत गये कि महाराज हरिश्चन्द्र के साथ महारानी शैव्या का विवाह हुआ था। आजही के दिन महाराज हरिश्चन्द्र ने सौंदर्यमयी शैव्या का कंकणविभूषित पाणिपल्लव, अग्निदेव को साक्षी रखकर, अपने करकंज में ग्रहण किया था। आज के ही दिन शैव्या ने प्रेम के पवित्र स्पर्श की विद्युत गति का अनुभव किया था। आज के ही दिन शैव्या का कोमल कलेवर, प्रथम बारही, प्रेम के शुचि संसर्ग से रोमाञ्चित हुआ था। आज के ही दिन मालती-लता में कलिका का विकाश हुआ था। आज के ही दिन लवंग-लता ने रसाल का आश्रय ग्रहण किया था, माधवीलता तमाल की जीवनसंगिनी बनी थी, दो हृदय एक हुए थे, दो आत्मायें एक हुई थीं। आज के ही दिन दो अर्द्ध शरीर मिलकर धर्मसूत्र से बंधा जाकर पूर्णता को प्राप्त हुए थे!

महारानी शैव्या अपने उस पवित्र दिवस में बड़ी प्रसन्नता के साथ अधिक दान ध्यान किया करती थीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दूसरा परिच्छेद

महाराज त्रिशंकू ने अपने सामने ही अपने सुयोग्य पुत्र हरिश्चन्द्र को राज्याधिकार सौंप स्वर्ग को पयान किया था। जब से महाराज अयोध्या के पवित्र राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए, तभी से बड़ी दक्षता के साथ राज कार्य को संभालते हुए, उत्तरोत्तर उन्नति क्षेत्र में अग्रसर होते गये थोड़े ही दिनों में उनकी यशकौमुदी संसार भर में फैल गयी उनकी धर्मपत्नि महारानी शैव्या आदर्श पतिव्रता थीं। यही कारण था कि आदर्श राजदम्पति के सुप्रबन्ध से अयोध्या नगरी स्वर्ग की सहेली जैसी प्रतीत होने लगी थी। प्रजाओं को वे पुत्र से भी अधिक स्नेह से पालना अपना कर्तव्य समझते थे। धनी, निर्धन, बलवान, अबल, सबों पर समदृष्टि रखी जाती थी। वैर विरोध को छोड़ सबकी सब प्रजायें बन्धु भाव से हिली मिली रहती थीं, यथार्थ में अयोध्या नगरी नहीं नहीं उनका साम्राज्य शांतिसदन हो रहा था। प्रजायें बड़ी सुख चैन से दिवस व्यतीत कर रही थीं, कहीं नाम मात्र को भी अराजकता टांग नहीं अड़ाने पाती थी। स्वार्थ फूट भी अपना बोरा बंधना लिये उनके साम्राज्य के बाहर जा छिपा था। न्याय नीति, धर्म कर्म अपना अधिकार जमाये हुए थे। ये सब होते हुए भी महाराज हरिश्चन्द्र उतना प्रसन्न नहीं दिखाते जितना होना चाहिये। कारण कि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पुत्र के बिना उनका भवन सूना था। अनेक यत्न करने पर भी जब उन्हें पुत्र नहीं हुआ तब वे महारानी शैव्या की सम्मति से अपने कुलगुरु ऋषिश्रेष्ठ वशिष्ट जी की सेवा में प्रार्थी हो बोले,—"गुरुदेव, संतान के बिना मेरा राज्यप्रासाद सूना है, मेरे पीछे इस विस्तृत राज का पालन कौन करेगा, अतएव आप ऐसी युक्ति बतावें जिससे मुझको एक पुत्ररत्न प्राप्त हो।"

महाराज की बातें सुन वशिष्ट जी ने कहा,—"महाराज, वरुणदेव की कृपा से आपको पुत्ररत्न प्राप्त हो सकता है अन्यथा नहीं। अस्तु, आप वरुणजी को तपस्या द्वारा तुष्ट करें।"

गुरुदेव के आज्ञानुसार महाराज हरिश्चन्द्र वरुण जी की तपस्या में तल्लीन हुए। यथा समय वरुणदेव उनकी तपस्या से तुष्ट होकर उनके निकट आ बोले,—"महाराज! आपने किस लिये इतना कष्ट उठाया? मैं आपकी तपस्या से प्रसन्न हुआ कहिये आप क्या चाहते हैं?"

म० हरिश्चन्द्र करबद्ध हो बोले,—"देव, यदि आप मुझ अकिंचन पर प्रसन्न हैं तो मुझे ऐसा वर दीजिये, जिससे मैं एक पुत्ररत्न प्राप्त कर सकूँ; क्योंकि पुत्र के बिना देव ऋण से उऋण नहीं हो सकूँ गा।"

महाराज की बातें सुन वरुणदेव बोले,—"यदि मैं आपको आप ही जैसा गुणी जगत्मान्य पुत्र प्राप्त करने का वर दूँ और आप वैसा पुत्र प्राप्त करें तो उसके बदले आप मुझे क्या देंगे? यदि पुत्र प्राप्त होने पर वही पुत्र पशुयज्ञ में मुझे प्रदान करने की प्रतीज्ञा करें तो मैं वैसा वर दे सकता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पुत्रो यदि भवेद्राजन्गुणी मनसि वांछितः ।
सिद्धे कार्ये ततः पश्चात्किंकरिष्यसि में प्रियम ॥
यदित्वं तेन पुत्रेण मां यजेथा विशंकितः ।
पशु वंधे न ते नैव ददामि नृपते वरम ॥

देवी भागवत

वरुणदेव की बातें सुन महाराज हरिश्चन्द्र कुछ देर मौन रहने के बाद बोले,—"यदि आप इसी शर्त पर वर देना चाहते हैं तो दीजिये । मैं आपके कथनानुसार ही वह पुत्र पशुयज्ञ में आपको दे दूँगा, पुत्र का मुख देख तो लूँगा, वंध्या दोष तो दूर होगा ।"

महाराज के निवेदन पर वरुणदेव ने वर प्रदान किया कि,—"आप को पुत्ररत्न प्राप्त होगा ।"

वरुणदेव महाराज को वर प्रदान कर अपने स्थान को लौटे और महाराज हरिश्चन्द्र अपनी राजधानी को लौट आये यथा समय उन्होंने अपनी धर्मपत्नी पतिव्रता शैव्या को वरुणदेव से वर पाने की बात कही और साथ ही शर्तें भी सुना दीं । पुत्र प्राप्त होने की बात सुनकर शैव्या बहुत प्रसन्न हुइ; किन्तु वरुणदेव की शर्तों से उन्हें कुछ चिन्ता अवश्य हुई । कुछ समय बाद महारानी गर्भवती हुईं, यथा समय महारानी शैव्या के गर्भ से एक अलौकिक रूपवान पुत्र उत्पन्न हुआ । महाराज हरिश्चन्द्र ने इस प्रसन्नता में असंख्यो धनरत्न लुटाया, दीन दरिद्रों को यथेष्ट दान दिया गया । ब्राह्मण देवता मन माना दान पाकर नवजात बालक को चिरंजीवि होने का आशीर्बाद देने लगे । अन्ध, खञ्ज, अपाहिजों को यथेष्ट धन वस्त्र दिया गया । प्रजाओं को एक वर्ष की लगान

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

छोड़ दी गयी। अपराधी कैदी कारागार से मुक्त किये गये। उस समय अयोध्या नगरी आनन्दसरिता में प्रवाहित हो रही थी। घर घर, आनन्दमंगल हो रहा था। प्रजायें भी अपने सुयोग्य महाराज के सुख में सुखी हो रही थी, तोरण वन्दनवारों से अयोध्या नगरी की गगनचुम्बी धवल अट्टालिकायें सुशोभित होने लगीं; घर घर मंगल कलश सुशोभित होने लगे, युवतियाँ मंगलगान गाती आती जाती दिखाने लगीं। नवजात पुत्र के आविर्भाव से महाराज का अन्धकारमय घर आलोकपूरित दिखाने लगा, नगाड़े के मंगल सूचक शब्द चारो ओर पूरित हो गये।

यथा समय वरुणदेव ब्राह्मण का रूप धारण कर महाराज हरिश्चन्द्र की पवित्र नगरी अयोध्या में उनके सन्मुख उपस्थित हो बोले,—"महाराज, आपको पुत्ररत्न प्राप्त हो गया। अब मेरी ओर देखिये, अपनी प्रतिज्ञा स्मरण कर शीघ्र उसको पूर्ण करने की चेष्टा कीजिये।"

महाराज हरिश्चन्द्र हाथ जोड़े आदर पूर्वक बोले,-"देव, मैंने आपके सामने जो प्रतिज्ञा की है उसको अवश्य पूर्ण करूंगा। आप निश्चिन्त रहें; पर आप से प्रार्थना यही है कि जब तक लड़के को दाँत नहीं हो तव तक के लिये क्षमा करें, क्योंकि अदन्त पशु भी वलिप्रदान नहीं किया जाता है। अस्तु जब तक बालक को दाँत न हो ले तब तक का मुझे समय दिया जाय।" राजा हरिश्चन्द्र की प्रार्थना को वरुण देव ने प्रसन्नता पूर्वक-स्वीकार कर लिया।

महाराज ने ज्योतिषियों से नवजात पुत्ररत्न की गणना द्वारा कुण्डली वनवायी, विचार के अनुसार नबजात बालक का नाम रोहित रखा गया। महारानी शैव्या ने ब यड़े

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से उसका लालन पालन करना आरम्भ किया। लड़का ज्यों ज्यों बढ़ने लगा त्यों त्यों उसकी सौंदर्यकली खिलने लगी। महाराजा और महारानी पुत्रको देख स्वर्गीय सुख का अनुभव करने लगे। जब रोहित को दाँत निकल आये तब पुनः वरुण जी ब्राह्मण का रूप धारण करके उनके राजप्रासाद के द्वार पर आखड़े हुए। ज्योंही महाराज को उनके आने की सूचना मिली त्योंही उन्होंने ब्राह्मणवेषधारी वरुण जी को रनिवास में आदर पूर्वक लिवाया। उधर सती शैव्या अपने प्राणाधार पुत्र को आगे किये पति के साथ ही ब्राह्मण देवता के आगे आ अभिवादन कर खड़ी होगयीं। वरुण जी ने महाराज को उनकी प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाया।

महाराज हरिश्चन्द्र ने इस बार भी जल देवता से पैरों पड़ प्रार्थना की कि—"नाथ, जब तक इस बालक का चूड़ाकरण, यज्ञोपवीत प्रभृति धर्मसंस्कार नहो जायं तब तक के लिये आप पुनः क्षमा करें।"

प्रभुवर ! जब होगा चौल संस्कार भारी ।
तब तक फिर मानो प्रार्थना ये हमारी ॥
इस विधि से नृप ने भी पुत्र मोहान्धकार ।
विचलित मति होके टार के बार बार ॥
बहुत दिन बिताया और यज्ञोपवीत ।
प्रमुदित करवाया चित्त में हो सभीत ॥

"कवि कुमार"

महाराज की प्रार्थना स्वीकार कर इस बार भी वरुण देव लौट गये। यथा समय बड़ी धूमधाम से महाराज ने रोहित का यज्ञोपवीत कराया। इस उत्सव में उन्होंने यथेष्ट दान दिया। ब्राह्मण देवता को कौन पूछे कोई भी उनके द्वार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

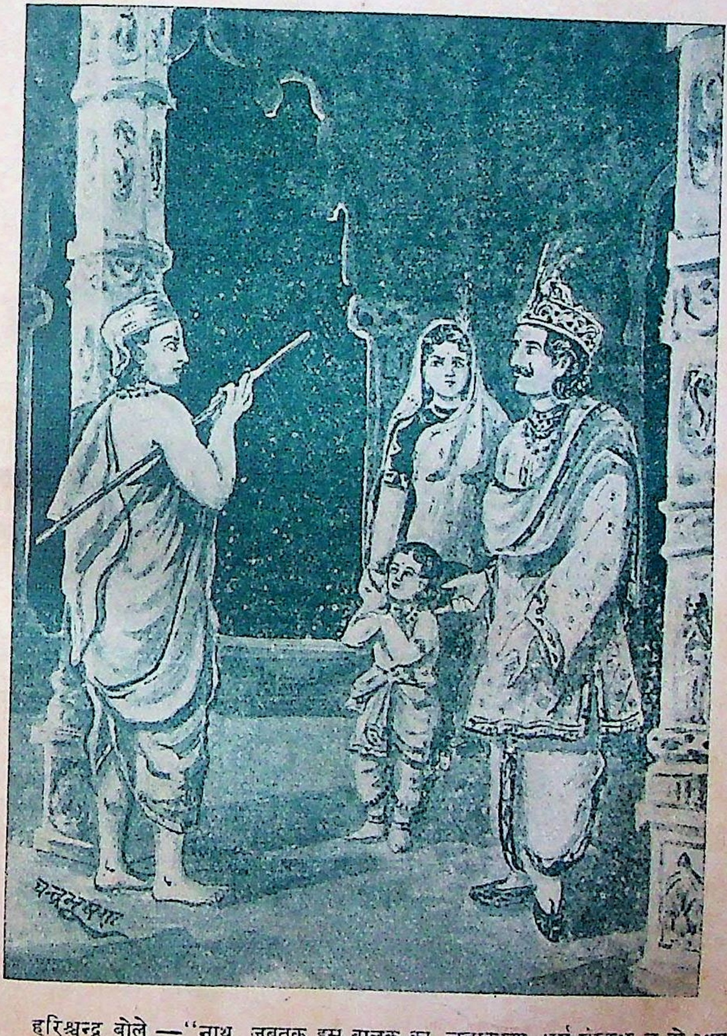

हरिश्चन्द्र बोले,—"नाथ, जबतक इस बालक का चूड़ाकरण धर्म-संस्कार न हो जाय तबतक के लिये क्षमा करें

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से विमुख नहीं लौटा । सबने मनमाना अन्न वस्त्र पाया । अनेकों को हाथी घोड़े गौएँ दान की गयीं । ब्राह्मणों के घर महाराज के दिये दान से भर गये, अनेकों को तो महाराज ने अजाचक कर दिया । अपना कोष दान ही से खाली कर दिया । पृथ्वी भर में उनकी सुकीर्ति घोषित होगयी । यह सब होने पर भी महारानी शैव्या प्रसन्न नहीं थीं; उनके मुखमण्डल पर चिन्ता की गहरी छाया अपना अटल अधिकार जमाये हुए थी । उनको इसी बात की भावना थी कि—'इस बार वरुण देवता को क्या कहा जायगा ?" इस प्रकार टाल बटाल करने से कहीं उनकी क्रोधाग्नि भड़क उठी तो अनर्थ होने में तनिक भी विलम्ब नहीं होगा; कहीं बिगड़ कर देवता जी श्राप दे बैठे तो बड़ा अन्याय होगा ।" इसी प्रकार की बातों की चिन्ता से वह चिन्तित रहा करती थीं ।

ज्योंही महाराज हरिश्चन्द्र कुमार रोहित का यज्ञोपवीत किला चुके त्योंही वरुण देव पुनः उनके आगे आ उपस्थित हुए । इस बार भी महाराजा ने प्रार्थना पूर्वक—उनसे निवेदन किया —"देव, यदि-आप रोहित को शिक्षा दिलाने तक की अवधि दें तो बड़ा उपकार मानूं । अन्यथा आप की जैसी आज्ञा हो मैं वैसा ही करने को तैयार हूँ । " इस बार भी वरुणदेव ने उनकी प्रार्थना स्वीकार ली; पर चलते समय कहते गये कि--आप पुत्रमोह के कारण समय बढ़ाते जा रहे हैं; किन्तु स्मरण रहे, इस बार विमुख लौटाने से विश्वास रखें परिणाम अच्छा नहीं होगा । " महाराजा ने उनकी बात स्वीकार ली । शीघ्रता पूर्वक कुमार रोहित के अध्ययन का प्रबन्ध कर दियो गया । कुमार रोहित की शिक्षा का श्री गणेश होगया; यथा समय शिक्षा पाकर वे तैयार भी होगये ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तीसरा परिच्छेद

शिक्षा पाकर कुमार रोहित के घर आने पर महाराज को अपनी प्रतिज्ञा वाली बात स्मरण करके बड़ी चिन्ता हुई। पुत्रमोह के वशीभूत हो वे अधीर हो रहे थे और उसी अधीरावस्था में यज्ञ की तैयारी करने लगे। पिता को चिन्तित देख कुमार रोहित को बड़ा दुःख हुआ। उसने पिता की चिन्ता को दूर करने की--अनेक युक्ति का अन्वेषण किया, किन्तु कोई युक्ति काम नहीं आयी। अन्तमें मंत्रीपुत्र से सम्मति लेकर वह वन को भाग गया। उसने सोचा कि इस से पिता की चिन्ता भी दूर होगी और मैं भी वन में अपना जीवन धारण कर फल मूलका भक्षण करता विचरता रहूँगा।

बस इसी धारणा को धेय समझ रोहित बन चला गया। उसके बन जाने से महाराज और महारानी अधिक चिन्तित थीं। यथा समय वरुण देवता हरिश्चन्द्र के आगे आ उपस्थित हो उनसे प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिये अनुरोध करने लगे। इस बार महाराज हरिश्चन्द्र अत्यन्त अधीर हो वरुणदेव के चरणोंसे लिपट कर बोले,—"नाथ क्षमा कीजिये, मैं विवश हूँ। मेरा पुत्र कहां चला गया है नहीं कह सकता हूँ। अनेकों अन्वेषण कराया पर कहीं उसका पता नहीं पाता हूँ। इस अवस्था में मेरा दोष नहीं, बल्कि मेरी अभाग्यता है—

सर्वत्र गिरि दुर्गेषु मुनि नामा श्रमेसुच ।
अन्वेपितो मेघूतै स्तुन प्राप्तो याद सांपते ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आज्ञापय महाराज किंकरोमि गते सुते ।
नमेदोषोऽत्र सर्वज्ञ भाग्य दोषस्तु सर्वथा ॥

"देवी भागवत"

इस बार वरुणदेव की क्रोधाग्नि भड़क उठी। उन्होंने समझा कि महाराज मुझ से छल कर रहे हैं। उसी समय क्रोधमें आकर उन्होंने उन्हें शापित किया,—"आपने मुझे बहुत छला। अस्तु, मैं आपको शाप देता हूँ। आप जलोदर, रोग से पीड़ित हो बचन भंग के पाप का भोग करें।" इतना कहने के बाद ही वरुणदेव अपने वरुणलोक को गये, इधर महाराज हरिश्चन्द्र शाप से अत्यन्त-भय भीत हुए, किन्तु करते क्या ? उसी समय उनको जल देवता के शाप ने आ दबाया। जलरोग से पीड़ित हो विह्वलता के साथ चारपायी की सेवा में निमग्न हुए। ज्योंही महारानी शैव्या को यह समाचार ज्ञात हुआ त्योंही वह अधिक अधीरता के साथ विलपने लगीं। केवल रोने धोने से कार्य होने को नहीं समझ शैव्या उस रोग से पति को मुक्त करने की चेष्टा में भी लगी रहीं। पतिसेवा के विषय में तो कहना ही क्या है। तन मन से रोगावस्था में पतिदेव के पलंग के पास वह पड़ी ही रहती थीं। उनकी सेवा से महाराज हरिश्चन्द्र उस दुःखावस्था में भी उतना दुःखी नहीं थे। उनको अगर दुःख था तो सिर्फ रोहित के घर छोड़ देने का। एक दिन समय पाकर शैव्या ने कहा,—"नाथ, अनेक प्रकार का औषधोपचार किया गया, किन्तु आपका रोग घटता नहीं है,—मैं समझती हूँ; गुरुदेव श्रीवशिष्ठ जी को बुलाकर इससे छुटकारा पाने की युक्ति पूछी जाय तो अच्छा हो। बिना उनकी युक्ति का अवलम्बन किये कार्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नहीं हो सकता है । "वचन भंग,, करना भी महापाप कहा गया है । अस्तु, जिस प्रकार से हो वरुणदेव का निपटारा कर लेना ही ठीक होगा ।"

म० हरिश्चन्द्र—मैं भी ऐसा ही अनुमान करता हूँ। आजही मंत्री को भेज गुरुदेव को कष्ट उठा कर यहाँदर्शनार्थ पधारने की प्रार्थना करता हूँ ।

इस विचार के बादही महाराज ने मंत्री द्वारा ऋषिश्रेष्ट वशिष्ठ जी की सेवा में निवेदन प्रगट कराया। ऋषिवर यथा समय हरिश्चन्द्र जी के राजप्रासाद में आ उपस्थित हुए। महाराज रुग्नावस्था में पलंग पर लेटेहुएथे। पलंग केपास ही पहले से ही रत्न जड़े एक सिंहासन रखा गया था।मुनिराज वशिष्ठ उसी आसन पर आसीन हुए महाराज बड़ी तकिया के सहारे पलंग पर ही उठ बैठे, गुरु को अभिवादन कर बोले,–"गुरुदेव, मैं वरुणदेव के श्राप से अत्यन्त कष्ट भोग रहा हूँ; आप इसकी ऐसी कोई अमोघ युक्ति बतावें जिससे शीघ्र वह रोग मेरा पिण्ड छोड़े ।

वशिष्ठ जी ने कहा,—"राजन् जब तक यज्ञ द्वारा आप वरुण जी को प्रसन्न नहीं कर सकेंगे तब तक आप का निस्तार नहीं दिखाता है ।"

म० ह०—किस प्रकार यज्ञ की पूर्ति करूँ, रोहित का तो कहीं पताही नहींदिखाता है। फिर ऐसी कौनसी युक्ति काम में लायी जाय !

वशिष्ठ—आप किसी ब्राह्मणपुत्र को खरीद लें, रोहित के बदले उसी की बलि देकर यज्ञपूर्ण करें। वरुणदेव प्रसन्न होंगे; इसी से आप निरोग हो जायँगे, अन्यथा नहीं ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

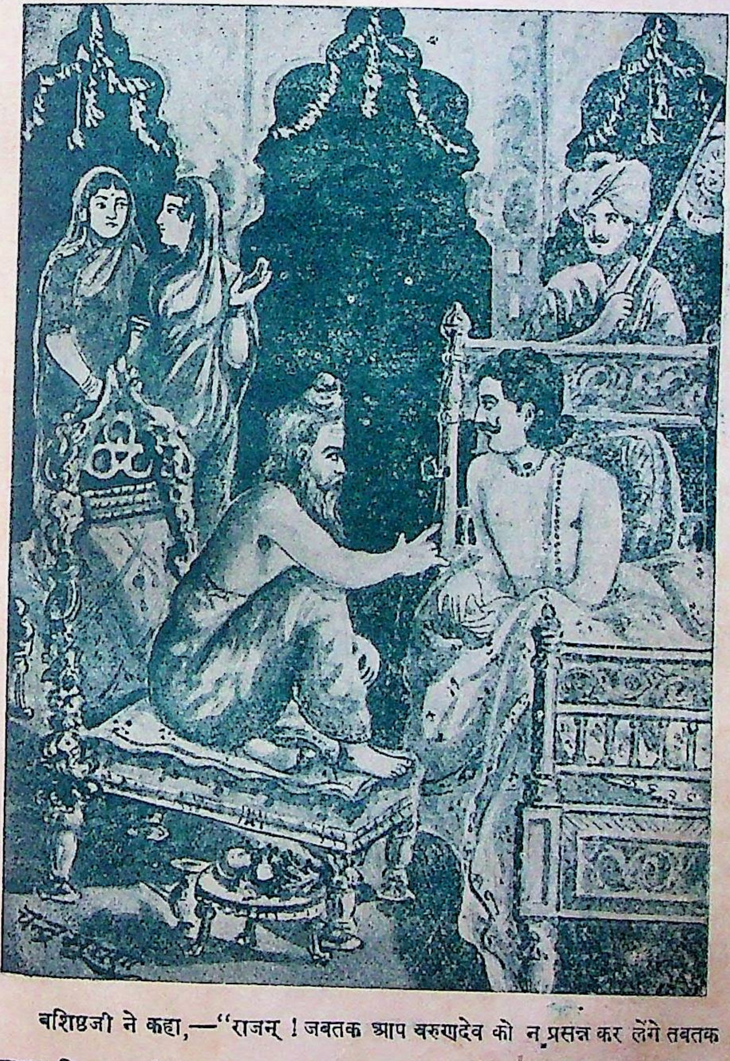

बशिष्ठजी ने कहा,—"राजन् ! जबतक आप वरुणदेव को न प्रसन्न कर लेंगे तबतक आपका निस्तार नहीं।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

जगन्नाथ प्रेस राजघाट काशी।

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

म० ह०—ऐसा कौन ब्राह्मण होगा जो अपना पुत्र यज्ञ बलि के लिये देने को तैयार होगा!

वशिष्ठ—इसकी आप चिन्ता न करें, आप के राज में ऐसे द्रव्यलोभी पिता हैं जो अपनी लोभलिप्सा के वशीभूत हो द्रव्य लेकर अपना पुत्र देंगे।

म० ह०—ऐसा कौन है गुरुदेव?

वशिष्ठ—आपके नगर में अजीगर्त नामक एक ब्राह्मण है, वही ऐसा करेगा।

म० ह०—तो क्या वरुणदेव उससे प्रसन्न होंगे? उन्होंने तो पुत्रवलि करने कहा था और मैंने भी वही स्वीकारा था।

वशिष्ठ—आप उसकी चिन्ता न करें; क्रय किया हुआ बालक भी पुत्र समझा जाता है।

गुरुदेव के आज्ञानुसार महाराज हरिश्चन्द्र ने अपने दूतों को यह कहकर नगर में भेजा कि "तुम लोग नगर में जाकर अन्वेषण करो कि कोई ऐसा ब्राह्मण है जो यथेष्ट द्रव्य लेकर अपना पुत्र मुझे पशुयज्ञ में वलि देने के लिये दे?"

आज्ञा पातेही अनेक दूत इधर उधर अन्वेषण में गये वही अजीगर्त अपना पुत्र विक्रय करने को राजी हुआ। उसके तीन पुत्र थे, बड़े को उसने अपना उत्तराधिकारी समझा, छोटे पर उसकी माता का अधिक स्नेह था; इसी लिए मझले 'शुनः शेप,, को ही बिक्रय करने का बिचार दृढ़ किया। यथा समय महाराज हरिश्चन्द्र के आगे दूतों ने उसे पेश किया। यथेष्ट धन ले कर उस अधम स्वार्थलोलुप ब्राह्मण ने अपना मध्यम पुत्र पशुयज्ञ के लिए विक्रय किया बहुत शीघ्रता के साथ यज्ञ की तैयारी की जाने लगी। ऋषिश्रेष्ठ विश्वामित्र भी उस यज्ञ की पूर्ति के लिये

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बुलाये गये । बड़ी धूम धाम से यज्ञ का श्रीगणेश हुआ विश्वामित्र जी ने वरुण मंत्र शुनः शेप को जपने बता दिया था । यज्ञ की पूर्णाहुति के बाद बालक "शुनः शेप,, बलिदान की वेदी के आगे लाया गया ।

बालक समझ गया था कि लोग मेरी हत्या करेंगे। इसलिये कुछ पहले से ही विलख २ कर रो रहा था। ज्यों ही घातक तलवार हाथ में लिये उसको बध करने आया त्यों ही बालक शुनः शेप भयातुर हो बड़े करुणा-स्वर से रोता हुआ चिल्ला उठा। महाराज की आज्ञा पाने पर भी घातक की तलवार नहीं उठी। उसके हृदय में दया का संचार हुआ, वह उसी समय उससे विमुख हो खड़ा हुआ। ऐसा देख महाराज हरिश्चन्द्र बहुत चिन्तित हुए। उन्होंने देखा बना कार्य भी बिगड़ना चाहता है । उसी समय वह लोभी अजीगर्त जो निकट ही खड़ा था अधिक द्रव्य मिलने की आशा से पुत्र को बधकरने पर तैयार हुआ ।

अजीगर्त वह रंक अशंकित,
अधिक चित्त को आशा वद्ध।
सुत को काट अधिक धन लूंगा ।
इस पर हाय हुआ सन्नद्ध ॥

(कबि कुमार)

ज्योंहीं अजीगर्त ने शुनःशेप को पकड़ा त्योंहीं बालक उससे लिपट गया और रोने लगा। उधर वरुणदेव जी ने वरुण मंत्र के जपते रहने से प्रसन्न हो यज्ञ स्थान में उपस्थित हो शुनःशेप को अभय प्रदान किया और महाराज हरिश्चन्द्र जी को भी कहा,—"महाराज मैं आप से प्रसन्न हूँ यज्ञ का फल आप को मिल गया। आप रोग मुक्त होगये। वरुणदेव के चरणों लिपट कर महाराज हरिश्चन्द्र जी कृतार्थ हुए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उधर शुनःशेप को विश्वामित्र जी अपना शिष्य बना अपने आश्रम को गये, महाराज रोगमुक्त हो प्रसन्नता पूर्वक घर लौटे ।

अब सती—शैव्या रोहित के लिये विह्वला हो विलपने लगीं, खाना पीना सब छोड़ चुकी थीं, महाराज को भी उनके लिये अधिक चिन्ता हो रही थी । अनेक दूत अन्वेषणार्थ भेजे जा चुके थे, पर अभी तक कहीं उसका पता नहीं मिला था ।

रोहित बन के फल मूलों से झोली भरे सुख चैन से समय व्यतीत कर रहा था। ज्योंही उसको ज्ञात हुआ कि पिता वरुणदेव के श्राप से जलोदर रोग से पीड़ित हैं त्योंही रोहित को बहुत दुःख हुआ । वह उसी समय नगर की ओर चलने को प्रस्तुत हुआ । उसी समय यह कहता हुआः--

मेरे लिये ही पूज्य पितुयों कष्ट भारी पा रहे ।
धिक्कार है मुझको यहां जो व्यर्थ जीने आरहे ॥
जब से हमारा जन्म है तब से व्यथित वे हो रहे ।
जीना जगत में व्यर्थ है किस हेतु हम यों रो रहे ॥

घर की ओर बड़ी तेजी से अग्रसर हुआ । उसको घर वापस जाता देख इन्द्रदेव को बड़ी चिन्ता हुई । उन्होंने विचारा कि बड़ा अनर्थ होना चाहता है । रोहित ही अयोध्या नगरी का भावी साम्राट है । इसकी जीवनरक्षा जिस प्रकार हो वही कर्तव्य है, क्योंकि यज्ञ भाग मिलेगा कैसे ? इसी धारणा से बन में उपस्थित हो, तब तक रोहित को अनेक प्रकार की बातों से बहलाते हुए रोके रहे, जब तक इधर उनके पूज्यपिता नीरोग नहीं हुए । देवराज इन्द्र ब्राह्मणका वेषधर कर उसके आगे उपस्थित हुए और रोहित फल मूलों से भरी झोली लिये खड़ा उनसे बातें करने लगा ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ज्योंही महाराज हरिश्चन्द्र वरुणजी से वर पा रोगमुक्त हुए त्योंहीं रोहित को ब्राह्मणवेषधारी देवराजजी ने छोड़ दिया उसी समय रोहित फल मूल की लदी हुई झोली लिये राजनगर की ओर अग्रसर हुआ। अहा, कैसा सुअवसर उपस्थित होने को है! यथार्थ में पुत्र का सम्मेलन कैसा अनुपम दृश्य उत्पन्न कराता है, यह अनुमान गम्य है।

प्रातः कालका समय था; भगवान दिवाकर की सुनहली किरणें नील-नभ-मण्डल को लोहित कर रही थीं। पक्षीगण अपने अपने निविड़ से निकल वृक्षशाखाओं पर बैठे, प्रभाती सुनाकर लोगों के चित्त को अपनी ओर आकृष्ट कर रहे थे। महाराज हरिश्चन्द्र उससे बहुत पहले ही निद्रादेवी की सेवा से अवकाश पा, प्रातःकाल के नित्यकर्मों से निबटारा पा चुके थे। महारानी शैव्या भी प्रातःकाल के नित्यकर्मों से निबटारा पा, घर कार्यों की देख रेख में लगी थीं। महाराज राजप्रासाद के बरण्डे में टहल रहे थे, उसी समय द्वारपाल ने आकर सिर झुका अभिवादन कर कहा,--"महाराज, कुमार आ रहे हैं।"

द्वारपाल के मुख से इतनी बातें सुनते ही महाराज का हृदय हर्ष से उछल पड़ा! वे उसी समय द्वार की ओर आगे बढ़ने ही को थे, कि तब तक कुमार रोहित फल मूल की झोली हाथ में लिये पिता के आगे आ उपस्थित हुआ। पिता को आगे देख, शीघ्रता पूर्वक हाथ की झोली अलग कर, कुमार उनके चरण में गिरने को थे ही, कि महाराज ने कुमार का हाथ पकड़ लिया। उस समय का दृश्य बड़ा ही मनोरम था। यथा समय महारानी शैव्या अपने प्यारे पुत्र को पा अत्यन्त आह्लादित हुईं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इसी दिनसे महाराज हरिश्चन्द्र और महारानी शैव्या अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक अपने अपने कार्य का सम्पादन करने लगीं। अब उन सबों को और किसी प्रकार की चिन्ता नहीं रही। सती शैव्या पति-सेवा से बचे हुए समय को अतिथि सेवा तथा धर्मग्रन्थों के मनन और अनुशीलन में व्यतीत करती थीं। कभी कभी वह अपने स्वामी के साथ वन उपवन में भ्रमण करती, तपस्वियों के पवित्र आश्रम को भी देख आया करती थीं।

इसी प्रकार सुख चैन से प्रजा पालन में ही लगा रहना दाम्पति अपना कर्तव्य समझते थे। नगर वन कहीं भी किसी को किसी प्रकार का कष्ट नहीं हो, इसपर उनका ध्यान बराबर लगा रहता था।

महाराज हरिश्चन्द्र ही उस समय भारत साम्राट और चक्रवर्ती महाराज थे। उनकी ही छत्रछाया के नीचे सम्पूर्ण संसार के राजागण शासन कर रहे थे ससागरा पृथ्वी पर उनका ही आधिपत्य था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चौथा परिच्छेद

बसन्तोत्सव के उपलक्ष में देवराज इन्द्र स्वर्ग में विशेष उत्सव के साथ सभा कर रहे थे। उस दिन स्वर्ग के सब देवतागण इन्द्रपुरी में उपस्थित हो उस उत्सव में सम्मिलित हुआ करते थे।

यथा समय सभास्थल पूरी तैयारी के साथ सजाया गया। नन्दनकानन के प्रस्फुटित पारिजात पुष्पगुच्छ स्थान स्थान में सजाया गया था। देवगणायें अपने हाथ से सभा को सुसज्जित करने लगी थीं। सौरभित सुमनसमूहों की सुन्दर मालायें पिरोकर स्थान स्थान में लटकायी गयीं। कुछ मालायें देवाङ्गनायों के केशगुच्छ की जूरों में विभूषित हो रही थीं।

ने पुष्पपत्तियों, लतागुल्मों से सभा अपूर्व सौन्दर्यमयी दिखा रही थी। मणि मुक्ताओं को तरास कर कला-कुशल शिल्पियों ने सुन्दर फूल पत्तियाँ बना कर सभा-स्थम्भों में जड़ी थीं। रात्रि समय रत्न के अनेक प्रदीपों को प्रज्वलित करने का प्रबन्ध किया गया था। अगर की बत्तियां जलायी जाने का उद्योग किया गया था। यथा समय सभा संगठित हुई। देवतागण अपने अपने स्थान पर आ बिराजे, देवराज इन्द्र भी रत्नजड़ित सिंहासन पर आरूढ़ हुए. नर्तकी, नृत्य करने लगीं। अनेक अप्सरायें एक साथही ताल के साथ नाचने लगीं, उनकी सुधामयी कण्ठध्वनि से निर्जीव सभास्थल भी सजीव हो गया। आनन्द का स्रोत प्रवाहित होने लगा। सब

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एक साथही ताल स्वर मिला कर नाच गा रही थीं। तबला, मृदङ्ग, सारङ्गी, सितार, इस्तराज, पखावज आदि प्रभृति बाजे एक ताल से बज रहे थे। चतुर गायिका और साज बजाने वाले सब शृङ्खलाबद्ध एक हो ताल स्वर से गा बजा रहे थे।

रम्भा, तिलोत्तमा मेनका, उर्वसी प्रभृति चतुर गायिकाओं का ताल भंग होने नहीं पाता था। यद्यपि वे सब गाने में इस प्रकार मस्त हो रही थीं कि उनको अपने अपने शरीर की भी सुधि नहीं थी, किन्तु तौ भी उनमें नाचने घूमने, पैर हाथ बढ़ाने में किसी प्रकार की असफलता नहीं होने पाती थी। यथार्थ में उन सबों के सिद्ध अभ्यास से ही किसी प्रकार का अनोचित्त भी नहीं प्रगटहोता था। किन्तु उन सबों के साथ कुछ नवीना, नवोढ़ रंगरूट गायिका भी अवश्य थीं, जो इन सबों जैसी दक्षा नहीं थीं।

उस दिन के नृत्यस्रोत में देवतागण भी बेसुध हो प्रवाहित हो रहे थे। वे सब भी ऐसे बे सुध हो जाते थे कि अपनी स्थिति, अपना स्थान भी भूल बैठे थे।

जिस समय सभा में अप्सरायें एक हो कर गातीं हुई अपनी गायनकला की कुशलता की सीमा पर पहुँच चुकी थीं, ताल स्वर एक साथ मिला हुआ था, उसी समय अचानक ताल भंग कर कुछ अल्लढ़ नवोढ़ा गायिकायें बैठ गयीं,

उनको वैसा करतेही उस आमोद स्रोत में हठात् रुकावट आ उपस्थित हुई। वे अल्लढ़ गायिकायें नेत्र कौंण से देवताओं को कटाक्ष द्वारा विद्ध करना चाहती थीं, ताल भङ्ग होते ही रम्भा, तिलोमा, मेनका, प्रभृति क्रोध से गुर्राती हुई अलग जा बैठीं। बजाने वाले भी अपने अपने साज को अलग कर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

क्षुब्ध हो बैठ रहे। ऐसा होते ही सभा में बड़ा गड़बड़ हो उठा। चारो ओर से "किसने ऐसा किया" की ध्वनि आने लगी। देवतागण भी इस गड़बड़ी से अत्यन्त क्रोधित हो गये।

उस विस्तृत सभा की एक ओर सुसज्जित सिंहासन पर देवराज शोभित थे, उनको भी इससे बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने अपने मधुर बचन से देवताओं को शांत किया और आप सिंहासन पर खड़े हो पुकार कर रक्षकों को बोले,—"जिस अल्प बुद्धि ना समझ अल्लढ़ गायिका ने इस में विघ्न डाला है उसको मेरे सामने उपस्थित करो! मैं उसके दोषों पर उसे उचित दण्ड प्रदान करूँगा।"

देवराज की आज्ञा पाते ही रक्षकों ने उस समय उन पांचों अल्लढ़ नवोढ़ा अप्सराओं को महाराज इन्द्र के आगे उपस्थित किया। उस समय वे अप्सरायें उसी प्रकार उन्मत्ता थीं, शरीर की सुधि बुधि उन्हें उस समय भी नहीं थी। किन्तु देवराज के क्रुद्ध होते ही वे कुछ संभल गयी थीं, उनका हृदय भय से धड़क रहा था! उन्हें इसका बड़ा भय हो रहा था, कि न मालूम देवराज हम लोगों के इस अपराध पर कैसा कठिन दण्ड प्रदान करेंगे।

उन्हें आगे आते ही इन्द्र जी ने क्रुद्ध स्वर में कहा,—"तुम लोगों की यह धृष्टता अक्षम्य है। तुम सबों ने क्यों ताल भंग कर रंग में भंग डाला? तुम सबों को इस कठिन अपराध का दण्ड भी वैसाही कठिन होगा।"

इन्द्रदेव की गम्भीर कण्ठध्वनि को सुन कर वे अप्सरायें भय से कापने लगीं, उसी समय पुनः देवेन्द्र बोले,—"तुम लोगों ने ऐसा अपराध किया है कि तुम

10508
CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सबों का स्वर्ग में रहना असम्भव है । मैं आज्ञा देता हूँ कि तुम सब आजही से इस जरा मृत्यु रहित देवलोक का परित्याग कर मृत्युलोक में बास कर, वहाँ के दारुण कष्टों उपभोग करती हुई, अपने पाप का प्रायश्चित करो ।"

देवराज की ये बातें सुनने ही वे अप्सरायें छिन्न-लता की भाँति वहीं मुर्छित हो गिर पड़ीं । चैतन्यता लाभ करने पर भी उनकी आंखों से अविराम अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी । वे सब की सब मौन मारे हाथ जोड़े खड़ी काँप रही थीं । यदि देवराज उन्हें सहस्रों वर्षों स्वर्ग के सुखों से बञ्चित कर वहीं कैद कर रखते तो भी वे इतनी अधीरा न होतीं ।

मृत्यु लोक जाने की आज्ञा सुनकर ही उनके धैर्यतन्तु टूट गये थे । इस दण्डाज्ञा को सुनकर देवतागण भी उनकी अवस्था को देख दुःखी हो रहे थे । स्वयं देवेन्द्र भी अपनी दण्डाज्ञा पर पश्चाताप करते थे । वे समझने लगे, कि इस अपराध का इतना कठोर दण्ड उचित नहीं हुआ । खैर, अब जो होना था हुआ; मैं अपने कहे हुए बचन को कभी वापस नहीं ले सकता हूँ । तब उसके प्रतिकार का उपाय किये देता हूँ । इसोविचार से वे पुनः उन अप्सराओं को सम्बोधन कर बोले,—"मैं समझता हूँ, अब तुम सबों को चैतन्यता हुई, तुम सब अपने किये पर पश्चाताप करती होगी । खैर जाओ, मैं तुम सबों के उद्धार की युक्ति बताये देता हूँ । मर्त्यलोक में अयोध्या नगरी के निकट ही एक मनोरम उपवन में महर्षि विश्वामित्र का पवित्र आश्रम है, तुम सब जाकर उन्हीं महर्षि के आश्रम में निवास करो । यदि किसी प्रकार कभी भी अयोध्यानरेश से साक्षात हो जायगी तो फिर तुम सबों के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लिये स्वर्ग का द्वार खुल जायगा और तुम सब यहाँ आसकोगी, अन्यथा नहीं।"

देवेन्द्र की इस कृपासनी वाणी को सुनकर अप्सराओं के प्राणपखेरू मानो उनके शरीरपिंजड़ में पुनः लौट आये। वे उस समय देवराज और देवसमाज को प्रणाम करके सभा-स्थल परित्याग कर चलीं।

देवतागण भी सभा भंग कर अपने अपने आश्रम को लौटे, और अप्सरायें भी सभास्थल से अपने अपने निवासस्थल को गयीं। देवराज भी सभा भंग कर रनिवास का आश्रय ग्रहण करने चले गये।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पांचवां परिच्छेद

महर्षि विश्वामित्र का तपोवन अत्यन्त रमणीक था। यदि प्राचीन काल के उस अपूर्व तपोवन का दृश्य देखना चाहते हैं तो एक बार हृदय के ज्ञाननेत्र को विस्फारित कीजिये। आपको उसकी झाँकी मिल जायगी। कहीं निर्मल जलपरिपूर्ण सरोवर में मराल विहरते, जल क्रीड़ा करते दिखाते हैं; तो वहीं हरिण चौकड़ी भरते दृष्टिगत होते हैं। कहीं गौएं चरती हैं तो कहीं मृगछौने अपनी माताओं के साथ आते जाते दिखाते हैं! कहीं पुष्पों से लदी शाखायें पृथ्वी को चूमती दिखाती हैं तो कहीं लोनी-लतायें लता-कुँजों पर लटकती पायी जाती हैं। वृक्षों की शाखाओं पर रंग विरंगे पक्षी बोलते चहकते और फुदकते हुए अपनी स्वतंत्रता की चासनी चूसते आनन्द में मग्न पाये जाते हैं। यथार्थ में उस पवित्र आश्रम की शोभा बड़ी निराली थी, भक्ष्य-भक्षक जन्तु भी वैर-विरोधको छोड़ हिले मिले रहते थे। उस पवित्र आश्रम को देखते ही क्षुधा, तृष्णा, भूल कर भी वहाँ निवास करने की इच्छा होती थी।

यथा समय वे पाँचो अप्सरायें उसी पवित्र आश्रम में आ उपस्थित हुईं। वे सब तपोवन के अपूर्वदृश्य को देखते ही स्वर्ग से बिछुड़ने के दुःख को भी भूल बैठीं।

महर्षि-विश्वामित्र सर्वदा उस तपोवन में नहीं रहते थे। तीर्थपर्यटन तथा गिरिकन्दरा प्रभृति में तपस्याकार्यादिक के कारण वे प्रायः उस तपोवन से बाहर ही रहा करते थे। केवल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कभी कभी यज्ञादि करने के लिये वहां आया करते थे।

उस निविड़ तपोबन में जिस समय वे अप्सरायें आयी थीं, उस समय भी महर्षि-विश्वामित्र आश्रम में नहीं थे। उस सुन सान मनोहर चित्ताकर्षक आश्रम में अप्सरायें प्रसन्नता पूर्वक रहती हुई स्वच्छन्दता पूर्बक बिहरने लगीं। वहाँ उन्हें किसी प्रकार का दुःखानुभव नहीं होता था, वे रातो दिन सुख पूर्बक भ्रमण करती हुई आश्रम में समय व्यतीत करने लगीं। कभी कभी पाँचो सखियाँ नवीन श्याम दुर्बादल आच्छादित मखमली फर्श जैसी सब्जी पर बैठ कर पादप शाखाओं पर बैठी हुई सुन्दर सुरीली कण्ठध्वनि वाले पक्षियों के मधुर गान को श्रवण करती थीं। मनोहर कुञ्जों से कल कण्ठी कोयल की मनोहर तान, पपिहा और श्यामा के पञ्चम स्वर के अपूर्व गान को सुनकर वे शरीर की सुधि भी भूल जाती थीं, उस समय उन्हें स्वर्ग भी फीका दिखाता था। उस सुधासनी गान को सुनने में वे पांचों सखियाँ ऐसी तन्मय हो जाती थीं कि कोई उस समय उन्हें सजीव कहने में भी सन्देह समझता था।

प्रातःकाल दिवाकर के उदित होते ही कलियाँ चटकनें और खिलने लगती थीं, पद्मिनी अपने प्रेमी के दर्शन से बिकशित होने लगती थीं, उस समय अलबेले अलिवृन्द व्याकुल हो प्रसून समूहों पर गुन गुनाते हुए भ्रमण करते दिखाते थे, वे अप्सरायें उसी प्रकार अपने नूपुरों को बजाती उन्हीं का अनुसरण करती हुई पुष्पों के निकट आती जाती दिखाती थीं। रात्रि के समय में जब कलाधर अपनी शुभ्र किरणों से उस उपवन को आलोकित करते थे, उस समय भी अनेक प्रकार के विकशित पुष्पों से उपवन अपना अपूर्व ही सौंदर्य दिखाता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

था; उधर नील नभ में नक्षत्रसमूह जगमगा रहे थे, इधर भी श्यामलतापादपों में अनगिनत विकशित सुमन उन्हीं का अनुकरण करते दिखाते थे। उस समय वे पाँचों सखियाँ वृक्ष की शाखाओं पर अपनी कोमल भुजायें रख कभी आकाश की ओर कभी उपबन की उस मनोहर ज्योतिष्णा की ओर देख देखकर मुग्ध होती रहतीं। इस प्रकार उस तपोबन में विहर विहर कर उन पांचो अप्सराओं ने समय व्यतीत करना आरम्भ किया। यद्यपि उन अप्सराओं के निवास से तपोबन के सौंदर्य में उतनी क्षति नहीं हुई थी पर तौ भी पहले जैसी शांति नहीं थी। पक्षी-पशु समूह जिस प्रकार निर्भय होकर पहले रहते थे वैसा निर्भय उस समय नहीं थे। अप्सरायें उन्हें कष्ट तो नहीं पहुँचातीं, लेकिन कभी २ पकड़ कर अपने निकट विठाये रखतीं, जिससे उन की स्वतंत्रता में बाधा पहुँचती थी। इसी से वे उन्हें देख कुछ भयभीत हो जाते थे। सुन्दर-सौरभित-सुमनों को भी अप्सरायें अपने शृंगार में लगातीं, इससे भी पुष्पों की कमी दिखाती थी। लताकुञ्जों में विहरने से भी कुछ लतायें छिन्न भिन्न सी हुई दिखाती थीं।

इसी प्रकार आमोद प्रमोद में कुछ दिन व्यतीत होगया। यों तो सुख और दुःख के दिन जाने में कुछ अन्तर होता नहीं, पर तौ भी सुख का समय देखते ही देखते बीत जाता है। इस आमोद प्रमोद में उन अप्सराओं के भी अधिक दिन उस तपोबन में देखते ही देखते बीत गये।

महर्षि विश्वामित्र कठिन योगसाधन में लगे हुये हिमालय की कन्दरा में थे। बहुत दिन बीत जाने पर वे अपने आश्रम को लौटे, यथा समय आश्रम में आ उपस्थित होने पर ज्योंही

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उनकी दृष्टि आश्रम के लता पादपों पर पड़ी त्योंही वे चकित हो गये, देखते हैं, यहां के प्राकृतिक दृश्य को कृतिम से हानि पहुँची है, पहले जैसी आश्रम की शोभा नहीं है, प्रकृति शिल्पकार के कार्यों में किसी अल्लढ़ अबोध के हस्ताक्षेप से सौंदर्य श्रीच्युत होगया है।

लतायें छिन्न भिन्न दिखाती थीं, पुष्प-समूहें जहाँ तहाँ बिखरे पाये जाते थे। कलित-कलाप-कोकिला पहले जैसी शाखांओं पर बैठ अपनी सुधासनी संगीतवाणी को नहीं सुनातीं, उनमें कुछ भय का संचार सा हो गया है। मृग-शावक पहले की भांति निर्भय खेलते कूदते नहीं दिखाते हैं। मयूर पहले की तरह नृत्य नहीं करते। हरी भरी दूबों की फर्शें पहले जैसी लहलहाती नहीं दिखातीं, वे रौंदी और कुचली प्रतीत होतीं थीं।

इन सब दृश्यों को देखतेही ऋषिश्रेष्ट विश्वामित्र की क्रोधाग्नि भड़की, आंखें क्रोध से लाल हो गयीं, इस बार उनके आश्रम को श्री हत करने का किसने दुस्साहस किया? इसी बात को जानने के लिए वे थोड़ी देर के लिए ध्यानस्त हुये और शीघ्रही सब रहस्य समझ कर क्रोधित हो बोले,—"अप्सरायें! तुम्हारी यह धृष्टता कभी क्षम्य नहीं, तुमलोगोंने हमारे आश्रम में आकर बड़ी धृष्टता की हैं, यदि फिर तुम सबों ने आश्रम के लतापुष्पों को स्पर्श करने का दुस्साहस किया तो इन्हीं लताओं द्वारा बांधी जाओगी, तुम्हारी अनेक चेष्टा पर भी तुम सब बन्धन से मुक्त नहीं होगी।"

महर्षि-विश्वामित्र इतना कहते हुए क्रोध के साथ ही पुनः आश्रम से बाहर चले गये।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust..

उस समय अप्सरायें वहां उपस्थित नहीं थीं, आश्रम से कुछ दूर लताकुञ्ज में बैठी चिड़ियों की सुरीली चहकार पर अपने को न्योछावर कर रही थीं । उस समय महर्षि के आने तथा उनके उस कठोर श्राप को नहीं सुन सकीं जिससे उनके आमोद प्रमोद में उस समय किसी प्रकार की विघ्न—बाधा उपस्थित नहीं हुई। वे ज्यों की त्यों बैठी गान सुनती ही रहीं !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

छठवां परिच्छेद

धीरे धीरे दिन का अवसान हुआ। संध्या के समय अप्सरायें लताकुंजसे बाहर निकलीं देखतेही देखते निशानाथ का चन्द्रबिम्ब आकाश में चमकने लगा, नक्षत्रों ने दर्शन दिया। कलाधर की निर्मल—कौमुदी से उपवन अपूर्व शोभा का प्रसार करने लगा। पुष्प समूहों में से कुछ तो खिलने और कुछ संकुचित होने लगे। उस समय वे पांचों अप्सरायें सदा की भांति उपवन में विहर विहर कर उसके सौंदर्यसुधा का पान करने लगीं। कुछ आगे बढ़ कर ज्योंहीं उन पांचों ने लता समूहों से कुछ मुकलित कलियां तोड़ने को उनका स्पर्श ही किया था, कि न मालूम कहा से असंख्यों लतायें उन पांचों के शरीर में आकर ऐसी लिपट पड़ीं कि जिससे वे सिवाय बंध जानेके टससे मस भीन कर सकीं। इस आश्चर्यजनक घटना से वे बहुत घबड़ायीं। उससे मुक्त होने के लिए उन्होंने अनेकों चेष्टा कीं, पर सब निस्फल हुईं, ज्यों ज्यों वे उन लताओं की ग्रन्थियों को सुलझाना चाहती त्यों त्यों वे अधिक उलझायी जाती थीं। बन्धन ढीला होने के बदले और भी दृढ़ होता जाता था, अन्त में विह्वला हो विलाप करने लगीं। वे जिस स्थान पर जिस प्रकार लताओं से बन्धीं पड़ी थीं उसी प्रकार उस स्थान में बंधकर पड़ी रहीं।

Sri Pratap Singh Library

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

क्षण, पल, घण्टा करके रात बीतने लगी, चन्द्रदेव अस्ताचल की ओट में छिपने चले, ऊषा का उदय—काल आ उपस्थित हुआ, नक्षत्र समूह भी अपनी सभा भंग कर श्रीहत हो छिपने की चेष्टा करने लगे। पर वे अप्सरायें ज्यों की त्यों लताओं से बन्धी तड़पती ही रहीं, उनके बन्धन में किसी प्रकार का परिवर्त्तन नहीं हुआ. यद्यपि वे सब अधिक व्याकुल हो फूट फूट कर रो रही थीं, पर उसका कुछ फल नहीं हुआ। क्योंकि अरण्यरोदन ही तो ठहरा। वहां मनुष्य थे ही नहीं, कौन उनकी रुलाहट पर ध्यान देता? रोते चिल्लाते ही यामिनी व्यतीत हो गयीं, राकेश, दिवाकर के दर्शन के पहले ही श्रीहत हो गये, पूर्व दिशा, प्रभाकर की अरुणप्रभा से रक्तरंजितासी हो गयी, देखते ही देखते उनका मण्डलाकार गोल बिम्ब क्षितिज से नभमण्डल पर चढ़ता हुआ दिखाने लगा। विहंग के कलरव सुनाने लगे। उस समय भी वे अप्सरायें उसी प्रकार अपने रोने के सुर ताल को बाँधी हुई थीं। भूख प्यास से उनकी कण्ठ-ध्वनि क्षीण सी हो गयी थी। वे चिल्ला चिल्लाकर कहतीं,—"यदि कोई इस कानन में हम सबों की बातें सुन रहे हैं, तो शीघ्र आकर बन्धन मुक्तकर क्षुधा तृष्णा से व्याकुल इन वालिकाओं की प्राण रक्षा करें।"

निर्जन कानन से घिरे हुए उस आश्रम में चिल्लाती अप्सराओं की बातें सुनता है कौन? यदि वहां कोई मनुष्य हो तब तो?

और कोई उनकी प्रार्थना सुने या नहीं, पर भगवान भक्तवत्सल के कर्णकुहर में तो उनकी आर्त-ध्वनि अवश्य पड़ी होगी, उन्होने उसी समय उनकी मुक्ति की युक्ति कर दी। आकस्मात न मालूम किधर से उन अप्सराओं के सामने एक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वीर वेषधारी धीर-पुरुष अपनी दिव्यमूर्ति लिए आ खड़ा हुआ। उस वीर पुरूष को देख कर अप्सराओं के हृदय में आशा का संचार हुआ, निकट जाकर उस वीर—विशारद ने उन नव युवतियों से कहा,—"तुम सब इस प्रकार क्यों रो पीट रही हो? किसने इन लताओं से तुम सबों के हाथ पैर को बांध रखा है ?"

युवतियाँ उत्कंठित हृदय से शीघ्रता पूर्वक बोलीं,- "महाशय! आप कृपा कर पहले हम सबों को इस कठिन बन्धन से मुक्त करें। हम सब किसी प्रकार इससे मुक्त नहीं हो सकीं हैं। पीछे अपना सब समाचार आपके आगे प्रगट करेंगी।"

उन युवतियों की बातें पूरी होते न होते उस वीर विशारद ने म्यान से अपनी तलवार निकाल कर उनके लताबन्धन को काट कर उन्हें मुक्त किया।

अप्सरागण यह देख बड़ी आश्चर्यिता हुईं। जिस बंधन को वे सब अनेक चेष्टा करने पर भी नहीं काट सकी थीं उसे उस वीर पुरूष ने बड़ी आसानी से काट कर उन्हें मुक्त किया। उसी समय एक और कौतुहल जनक दृश्य देख पड़ा। युवतियाँ कृतज्ञता प्रकाश भी नहीं कर सकी थीं कि उन सबों की दृष्टि आकाश की ओर एक अद्भुत दृश्य पर पड़ी। आकाश से आकस्मात रक्त वर्ण तेज प्रभावान एक सुन्दर रथ उतरता दिखाई पड़ा। वह वीर पुरुष निर्निमेष रथ की ओर आश्चर्य की दृष्टि से देख रहा था, युवतियां भी उसी ओर देख रही थीं। ज्यों ज्यों वह रथ निकट आता जाता था त्यों त्यों उस पुरुष का कौतुक बढ़ता जाता था। किन्तु वे अप्सरायें अपनी खोयी हुई अमुल्य वस्तु के पाने की अभिलाषा से आनन्दित हो रथ की ओर देख रही थीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

देखतेही देखते अनेक प्रकार की अमूल्य वस्त्रों से अलंकृत रथ युवतियों के आगे आ उतरा, अप्सरायें हर्षित चित्त उस परिचित रथ पर जा बैठीं, यह देख वीर पुरुष और भी आश्चर्यित हुआ, किन्तु कुछ बोला नहीं; उसी प्रकार टकटकी लगाये उस ओर देखताही रहा। ज्योंही अप्सरायें रथ पर जा बैठीं त्योंही पुनः रथ धीरे धीरे ऊपर उठने लगा वीर पुरुष उसी प्रकार देखता ही रहा, तलवार ज्यों की त्यों उसके हाथ में पड़ी थी; बिल्कुल शरीर जड़ हो रहा था आँखें निर्निमेष उसी ओर टक टकी लगाये हुई थीं। उन अप्सराओं को ले कर रथ कुछ ऊपर उठाही था कि उन अप्सराओं ने अपनी अपनी अञ्जलि में पारिजात सुमन को भर भर कर उस वीर पुरूष के ऊपर वृष्टि करके कहा,—"महाराज, आप किसी प्रकार विस्मय नहीं करें, हम सब स्वर्ग की अप्सरायें हैं, शाप से यहाँ आ पड़ी थीं। आप के पवित्र शरीर के स्पर्श से हम सब शाप से मुक्त हो स्वर्ग जा रही हैं। हम सबों के वर से आप की कीर्तिकौमुदी संसार को उज्वल करती रहेंगी। जीवन रहते आप धर्म का परित्याग नहीं करेंगे।"

इतना कहने के बाद ही उनका रथ बहुत ऊपर उड़ गया और दृष्टिपथ से दूर हो गया।

वह वीर पुरुष भी धीरे धीरे उस उपवन को छोड़ अपने अभिष्ट मार्ग का पथिक हुआ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सातवां परिच्छेद

जिस दिन यह घटना घटी, उसके दो तीन दिनों के बाद पुनः महर्षि विश्वामित्र अपने आश्रम को लौटे। उनको उस दिन की बात स्मरण हो आयी कि मैं जिन अबोध अल्हड़ रमणियों को अभिशापित कर आया हूँ आज उन्हें बँधी पाऊँगा आज प्रत्यक्ष होने पर उन्हें उनकी धृष्टता का मजा चखाऊँगा। जान पड़ता है कि वे सब मेरे प्रभाव को नहीं जानती थीं। अगर नहीं तो ऐसी धृष्टता नहीं करतीं अब उनको मेरे प्रताप का परिचय मिला होगा; वे अपने किये दुष्कर्म का फल भोगती होंगीं।" इसी प्रकार की बातें विचारते ऋषिवर लम्बी लम्बी २ डेगें भरते उत्कण्ठा पूर्वक अपने आश्रम की ओर बढ़ने लगे।

आश्रम में पहुंचने पर वहाँ किसी को नहीं पा कर विश्वामित्र जी बहुत आश्चर्यित हुए। आश्रम के आस पास लताकुंजों में अनेक अनुसंधान किया, पर कहीं किसी का पता नहीं मिला, इससे उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा वे सोचने लगे,—"क्या मेरा ब्रह्मतेज, तपप्रताप नष्ट हो गया?" इस विचार से वे और भी चंचल हो उठे।

अकस्मात् उनकी दृष्टि टूटी कटी लताओं पर पड़ी। देखतेही शीघ्रता पूर्वक वे उन छिन्नलताओं के निकट जा पहुँचे, वहाँ पहुँच कर उन टूटी कटी मुर्झायी लताओं को हाथ में उठा कर देखा कि किसी के अस्त्रप्रहार से लतायें छिन्न भिन्न हुई

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जान पड़ती हैं। अतः मालूम हुआ कि उन बँधी हुई अप्सराओं के बन्धन को किसी ने तलवार से काट दिया है। उन्होंने समझ लिया कि अभी मेरे तप का प्रभाव है। अप्सरा बँध चुकी थीं, न मालूम किस दुर्बुद्धि हतभागा ने उन्हें बन्धनमुक्त करने की चेष्टा की है, इस वार उसी को अपने किये का फल चखाता हूँ।

इतना कहने के बादही ध्यानस्थ हो उन्होंने सब रहस्य का भेद पा लिया, इस वार उनकी जलती हुई क्रोधाग्नि में घी की आहुति पड़ी। उसी समय क्रोध से काँपते हुए महर्षि विश्वामित्र अयोध्या की ओर अग्रसर हुए।

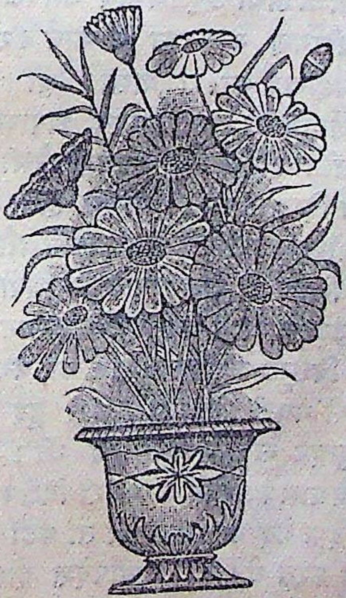

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आठवां परिच्छेद

पावन सरयू के पुलीन पर कोसों लम्बी चौड़ी अयोध्या नगरी स्वर्ग के सौन्दर्य को मात करती हुई अवस्थित थी। उसकी तीन ओर ऊँची चार दिवारी थीं, जिन पर विजयपताकायें फहरा रही थीं, और एक ओर से सरयू की सुभग धारा कल कल नाद करती प्रहरी का कार्य कर रही थी। चार दिवारी के उस पार गगनचुम्बी ऊँची ऊँची अट्टालिकायें थीं; जिनमें अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित वीरगण नगररक्षा का कार्य कर रहे थे। नगर के मध्य में महाराज का राजप्रासाद था। राजमहल की सजावट अवर्णनीय थी, वह पावन अयोध्या नगरी स्वर्ग सहोदरासी प्रतीत होती थी; स्वर्गही जैसी सौन्दर्यशालिनी और वैभववान दिखाती थी। मालूम होता था, नहीं नहीं यथार्थ में अयोध्या जैसी नगरी संसार में और कहीं नहीं थी राजप्रासाद के निकट ही राज घराने के पुरुषों और सम्बन्धियों के लिए ऊँचे उज्वल भव्य भवन शोभायमान थे। राजप्रासाद की एक ओर विस्तृत मनोहर उद्यान था, नगरनिबासियों की अट्टालिकाओं से नगरी खचा खच भरी हुई थी। नगर के मध्य में कई सुन्दर सड़कें बनी हुई थीं। अनेकों मन्दिरें धर्मशालायें, विद्यालय प्रभृति से नगरी विशेष सुशोभित हो रही थी। कहीं वैदिक वेद पाठ करते थे तो कहीं विद्यार्थी शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त करते थे। कहीं धर्मोपदेश होता था तो कहीं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दीन दुखियों को अन्न वस्त्र प्रदान किया जा रहा था। कहीं वीरविशारद रणपुङ्गव वीरगण के अस्त्र की झंकार से नगरी गूँज रही थी। अनुपम दृश्य था। उसी मनोहर नगरी के राजप्रासाद से लगे हुये रङ्गमहल में देव परियों के रूप को मात करने वाली कई सुन्दरी युवतियाँ बैठी आपस में हँस बोल रही थीं, उन युवती समूह के मध्य में रति के सौन्दर्य को मात करने वाली एक अत्यन्त रूपवती युवती बैठी थी। किन्तु प्रति दिन की भाँति वह आज उतनी प्रसन्न नहीं है, उसका चन्द्र मुख म्लान हो रहा था, यद्यपि और सब सखियाँ हँस बोल रही थीं किन्तु उसको उनका हँसना बोलना अच्छा नहीं मालूम होता था। पाठक ! समझ गये होंगे कि वह सुन्दरी महारानी शैव्या थीं। आज कई दिनों से महाराज हरिश्चन्द्र शिकार के लिए घर से बाहर निकले हुए थे; किन्तु अब तक शैव्या को उनकी कोई खबर नहीं मिली थी। इसी से वे चिन्ता ग्रस्त थीं। यद्यपि शैव्या से उनका जाना छिपा नहीं था, या यों कहिये कि शैव्या के अनुरोध से ही वे शिकार में गये थे आज पन्द्रह दिन हुए महारानी शैव्या ने उनसे अनुरोध किया था कि "नाथ ! रोहित के लिए एक ऐसे हरिणशावक की आवश्यकता है जिसके पुच्छ सुनहले हों और शरीर में अनेकों तारा जैसे छींटें हों।" महारानी के अनुरोध को स्वीकार कर महाराज हरिणशावक की खोज में ही वन को गये थे। सती शैव्या पति के पवित्र चरण के दर्शन से वञ्चित रहने से ही विह्वला हो रही थीं; इतने दिनों तक महाराज की सुधि नहीं मिलने से उनकी पतिव्रता पत्नि का चित्त कैसा विकल और अधीर होता होगा, यह अनुमान गम्य है।

जब किसी प्रकार शैव्या की चित्तवृत्ति स्थिर नहीं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हो सकी, तब वह अपनी सहेलियों के साथ उपवन की ओर मन बहलाने को गयीं। और सब सखियाँ उपवन के लताकुञ्जों की ओर बिहरने निकलीं, शैव्या उपवन के मध्य सरोवर की संगमरमर से बन्धी हुई घाट पर बैठ सरोवर में खिले कमलपुष्पों की ओर निर्निमेष देख रही थीं, यद्यपि उनकी दृष्टि विकशित कमलों पर ही अड़ी थी, किन्तु उन का ध्यान सरोवर सुमनों पर नहीं था, वह पतिदेव के लिये ही चिन्ता कर रही थीं ! "न मालूम हृदयदेव इतने दिनों तक कहाँ भटकते होंगे ? मैंने उनको शिकार का अनुरोध कर अच्छा नहीं किया, इतने दिनों तक वे बिना कोई सूचना दिये ही क्यों अड़े हुए हैं ? पतिदेव ने इस दासी की अभिलाषा पूर्ण करने में कभी भी बिलम्ब नहीं किया, न मालूम आज क्यों इस प्रकार सेविका को त्याग कर कहाँ जा छिपे हैं। उनके बिना मेरा यह जीवन ही व्यर्थ है !" इसी प्रकार की बातों से शैव्या का हृदय ओत प्रोत हो रहा था, वह अपनी शरीर की सुधि भी भूल चुकी थीं, निर्जीव प्रतिमा सी सरोवर घाट पर बैठी कमल की ओर टकटकी लगाये ताक रही थीं ! उसी समय ताल के दूसरे किनारे वृक्षसमूहों की ओट में एक युवक वीरवेष में छिपा छिपा यह दृश्य देख रहा था। बहुत देर तक शैव्या की ओर देखते रहने पर जब वह वीर पुरुष उसके विषय में कोई निर्णय नहीं कर सका तब धीरे धीरे शैव्या की ओर अग्रसर हुआ। मैं पहले ही बता चुका हूँ कि शैव्या ऐसी चिन्ताग्रस्त ध्यानमग्ना थीं कि शरीर की सुधि भी भूली हुई थीं, वैसी अवस्था में उस वीर पुरुष के निकट आने पर भी वह कुछ नहीं जान सकीं उनके निकट खड़ा होकर कुछ देर पुनः युवक वीर उनकी ओर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पूर्ववत देखता ही रहा। शैव्या का श्रीहत मुखमण्डल देख वह युवक अधिक देर नहीं ठहर सका, बड़ी व्यग्रता के साथ बोल उठा,—"प्यारी शैव्या।"

अकस्मात् महारानी शैव्या चमक उठीं; नेत्र उठाकर उन्होंने युवक की ओर देखा, देखते ही वे शीघ्रता पूर्वक युवक के चरणों में लिपट गयीं, युवक ने उन्हें उठाकर प्रेमपूर्वक हृदय से लगा कहा,—"प्यारी शैव्या, इस प्रकार चिन्तित क्यों हो? सरोवर की कमलकलियों की ओर क्या देख रही थीं?"

म० शैव्या का म्लान मुख प्रभायुक्त हो दिव्य तेज़ से दमकने लगा। उन्होंने पतिदेव के प्रश्न का कुछ उत्तर नहीं दिया और चुप चाप उनके हृदय से लिपटी रहीं, उनकी यह अवस्था देख पुनः महाराज हरिश्चन्द्र बोले,—" जरा कहो भी तो, कमल की ओर क्या देख रही थीं? मैं वृक्ष की ओट में छिपकर बहुत देर से तुमको देख रहा था, पर कुछ निश्चय नहीं कर सका कि तुम्हारी यह दशा क्यों थी।"

"पतिदेव छिपकर शैव्या को बहुत देर से देख रहे थे" यह जानकर महारानी बड़ी लज्जित हुईं, पश्चात् प्रगट में बोलीं,-"आप इस प्रकार छिपकर दूसरे के कार्यों को क्यों देखा करते हैं? क्या अवसर पाकर मेरा सर्वस्वहरण करेंगे?"

म० हरिश्चन्द्र--क्या मुझको अपना सर्वस्व देने में तुमको इतनी आपत्ति है? जरा विचार कर देखो, मैं तुम्हारा कौन हूँ।"

शैव्या मनहीमन बोली,—"देवता, सर्वस्व, एकमात्र हृदय अधिपति! फिर प्रगट में बोली,-"चाहे कोई हों, पर अपनी वस्तु क्या कोई दूसरे को देना चाहता है? "

महाराज हरिश्चन्द्र शैव्या के मुख से ऐसी बातें सुनेंगे इसकी आशा उन्हें स्वप्न में भी नहीं थी; पर आज उनको

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बातों से उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। कभी उसे शैव्या का उपहास समझनेके अतिरिक्त वे कुछ दूसरा नहीं समझते, पर हंसी में भी कभी उनके मुखसे ऐसी बातें नहीं सुन पाये थे, इससे वे उसे हँसी भी नहीं कहते, तब क्या यह शैव्या की आन्तरिक बातें हैं? क्या यथार्थ ही वह मुझको दूसरा समझती है? अगर नहीं तो ऐसी बोली क्यों? महाराज इस प्रकार की बातें सोचही रहे थे कि पुनः शैव्या के मुखमण्डल पर उनकी दृष्टि जा पड़ी, महारानी उस समय मुसकुरा रही थीं।

हठात उन्होंने महाराज से पूछा,—"नाथ! आप जिस हरिण शावक के लिये इतनों दिनों तक राजधानी से बाहर थे, वह हरिणशावक कहाँ है?"

म० हरिश्चन्द्र लज्जित होकर बोले,–"प्यारी। मैंने पन्द्रह दिनों तक अनेक जंगलों में भ्रमण किया; किन्तु कहीं भी वैसे हरिण के बच्चे नहीं मिले, समझ पड़ता है कि भारत के काननों में वैसे हरिण मिलते ही नहीं।"

महारानी शैव्या पति के बचन से बहुत दुःखित होकर बोलीं,—"नाथ! इसमें आपका कोई दोष नहीं है, यह मेरी अभाग्यता है, आपके राजकोष में सबके योग्य सब वस्तु है पर मेरे लिये कुछ नहीं।"

इतना कह शैव्या ने उलट कर देखा, कुछ पीछे हट कर माधवी खड़ी है, उसको सम्बोधन कर कहा,–"बहिन, सुनो महाराज मेरी सामान्य प्रार्थना को भी नहीं स्वीकार ने को तैयार हुए, कहते हैं,—"भारत में वैसे हरिणकिशोर मिलते ही नहीं।"

म० हरिश्चन्द्र बोले,–"प्यारी, क्या तुमको मेरी बातों पर विश्वास नहीं होता है?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शैव्या-नाथ, दासी कब आपके वाक्य को वेदवाक्य नहीं समझती है?

इतनी बातें मनही मन बोली, पर प्रगट में कुछ नहीं कहा। उसी समय देवमन्दिर में सन्ध्या के नगाड़े बज उठे। शैव्या ने माधवी से कहा,-"सखी; चलो संध्या पूजा का समय हुआ, देवमन्दिर में आरती उतारने चलूँ" इतना कहने के बाद ही वह सखी के साथ सरोवर से देवमन्दिर की ओर चलीं। महाराज कुछ देर वहां खड़े रहने के बाद राजप्रासाद की ओर चिन्तित चित्त चले। शैव्या के इस प्रकार का व्यवहार आज उनको बड़ा बुरा प्रतीत हुआ। आज के पहले कभी उन्होंने उसका ऐसा व्यवहार नहीं देखा था। वे उस प्रकार के व्यवहार का कुछ रहस्य नहीं समझ सके, कभी शैव्या का उपहास और कभी कुछ और ही समझ कर कुछ निर्णय नहीं कर सके थे।

यथार्थ में शैव्या के सच्चे हृदय का वह उद्‌गार नहीं था, चलते समय भी वह पति की ओर एक प्रेमसनी वक्र दृष्टि किये गयी थी, जिससे उनका पवित्र पतिप्रेम टपक रहा था।

घर आकर भी महाराज हरिश्चन्द्र शांत नहीं हुए, शैव्या का स्मरण करके चिन्ता करने में ही व्यस्त रहे। कई दिनों बाद राजधानी लौट आने पर भी उन्होंने राजकार्य सम्बन्धी किसी-बात की पूछताछ नहीं की और मुखमुद्रा गम्भीर किये सोच समुद्र में गोता मारते ही रहे, सेवक सेविकायें उनकी यह अवस्था देख घबड़ायीं; पर किसी को कुछ पूछने का साहस नहीं हुआ। महाराज सोच रहे थे कि "शैव्या का स्वभाव पहले ऐसा नहीं है, इस बार इस विचित्र परिवर्त्तन से मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है, क्या वही शैव्या है जिसके साथ में प्रथम मिलन में स्वर्गीय सुख का अनुभव करता था?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

क्या यह वही शैव्या है जो मेरे लिये अपना सर्वस्व न्यौछावर कर चुकी थी ? क्या यह वही शैव्या है जो अपनी स्वाभाविक सुधा सनी वाणी से मेरी मानसिक चिन्ताओं को दूर खदेड़-ती रहती थी ? क्या यह वही शैव्या है जिसके साथ मैं वसन्त विकास के समय उपवन के लताकुञ्जों में बैठा प्रेमालाप किया करता था ? क्या यह वही शैव्या है जो ग्रीष्मउत्ताप से पीड़ित होकर मुझसे हिमालय के रमणीक शृङ्ग पर निवास करने का आग्रह करती थी और मैं भी उसके साथ हिमगिरि की चोटियों पर निवास करता था ?

क्या वह वही शैव्या है जो वर्षाऋतु में मेरे साथ नर्मदा के पुलीन पर जलविहार करने जाती थी ।

क्या यह वही शैव्या है जिसके मुखमण्डल को देखकर मैं चन्द्रमा को भी तुच्छ समझता था ।

क्या यह वही शैव्या है जिसको मैं अपने मानसमन्दिर की अधिष्ठात्री देवी समझता था ?

क्या यह वही शैव्या है जिसके साथ मेरा प्रणयसूत्र ग्रथित हुआ था, जिसको मैं अपनी जीवनसंगिनी समझता था ?

इस प्रकार कुछ देर चिन्ता के साथ विचार करते रहने के बाद महाराज हरिश्चन्द्र अपने महल में जा पलंग पर सो रहे; निद्रादेवी भी उन्हें विश्राम देने के लिये शीघ्रही आ उपस्थित हुईं ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नववाँ परिच्छेद

पाठक भी अनुमान करते होंगे कि पतिव्रता शैव्या के योग्य यह कार्य्य नहीं हुआ, उसकी यह उपेक्षा उसके पवित्र चरित्र को दूषित कर सकती है । बात ठीक भी हो सकती, किन्तु यथार्थ में शैव्या के सच्चे हृदय का यह उद्‌गार नहीं था, उसके मानस मन्दिर में उसके आराध्यदेव पूज्य पति महाराज हरिश्चन्द्र के लिये वही भाव बना हुआ था जैसा पहले था। उसमें रंच मात्र भी फर्क नहीं हुआ था। उसके आज का व्यवहार भी पतिप्रेम से असहयोग करने वाला था नहीं, उसने जो कुछ किया था वह पति की हितचिंतनाके विचार ही से। बात यह थी, कि शैव्या ने प्रजाओं को यह कहते सुना था "कि महाराज महारानी के आग्रह अनुरोध को पूरा करने को ही अपना पहला कार्य्य समझते हैं। अगर नहीं तो इस प्रकार पन्द्रह दिनों तक राजभार मंत्री पर सौंप वन में घूमने की क्या आवश्यकता थी ?"

इसी अपवाद के दूर करने के लिये मानों शैव्या ने महाराज को अपनी ओर से इस ऊपरी व्यवहार द्वारा उनके चित को राजकार्य की ओर ही आकर्षित कराने की चेष्ठा की थी किन्तु हाय ! शैव्या के इस प्रकार के व्यवहार का कुछ और ही मतलब लगाकर महाराज व्याकुल हो अनेक प्रकार की शंकायें कर रहे थे ।

शैव्या ने तो विचारा था कि मेरे कारण पतिदेव की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कीर्तिकौमुदी कलुषित नहीं हो यही करना उचित है और इसी विचार से उसने स्वार्थ को तिलाञ्जलि दे ऐसा किया था।

महाराज हरिश्चन्द्र के निकट से आकर महारानी शैव्या अपनी सखी माधवी के साथ देवमन्दिर को आई। वहां विधिवत् संध्या पूजा करके सखी से बोली,-"सखी, माधवी महाराज मेरे व्यवहार से अवश्य असन्तुष्ट हुए होंगे, तुम मेरी ओर स जाकर परिचर्या द्वारा उन्हें शांत करना। मैं अभी और कुछ देर तक मन्दिरों में भगवान की झांकी लूँगी।"

माधवी—अच्छा कहती हैं,महारानी, वे आपके पतिदेव हैं, आप से रूठे हैं तो आप से ही मनाये भी जायेंगे। दूसरी दूसरे को क्या मनाने जाने ?

शैव्या हंसती हुई बोली,-"मैं भली प्रकार जानती हूँ,तुम इस कार्य में बड़ी दक्षा हो।

माधवी—अपने लिये सभी दक्षा होती हैं। कहावत भी है "जिसका बन्दर वही नचावे।"

शैव्या-यदि उससे नहीं हो सके तो क्या दूसरा उसको नहीं संभाल सकता है ?

माधवी—मैं तो नहीं संभाल सकती सखी, यदि और कोई संभाल सके तो उसको ही कहना ठीक होगा।

शैव्या-तो क्या तुम कुछ नहीं कर सकोगी !

माधवी-नहीं।

शैव्या माधवी का हाथ पकड़ती हुई बोलीं,—"सच कहती हूँ सखी ! महाराज के निकट जाकर कहदो कि मेरे आने में कुछ विलम्ब है।"

माधवी-क्षमा करें महारानी जी, इस समय मैं महाराज से जाकर कुछ नहीं कह सकती, न मालूम वे क्या सोचते होंगे,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

 Digitized by eGangotri and Sarayu Trust

इतना कह माधवी अपने घर गई, महाराज हरिश्चन्द्र रनिवास में रत्न जड़ित पलंग पर आ लेटे और विचारते ही विचारते सो गये। मन्दिर से चलते समय शैव्या ने भगवान को प्रणाम किया सही, किन्तु उस समय उसका ध्यान भगवान की ओर नहीं होकर अपने हृदयदेव महाराज हरिश्चन्द्र जी के कमलचरण में था। वह वहाँ भी उसी चरणकंज का ध्यान करती हुई उन्हें बारम्बार प्रणाम कर रनिवास को वापस आयी। यहाँ पतिदेव को पलंग पर सोया देख बहुत काल तक उनके मुखमण्डल की अलौकिक कान्ति को देखती रही, पश्चात् उनकी चरणधूरि को हृदय और मस्तक में लगाकर उनके पयताने के नीचे लेट रही।

महाराजा हरिश्चन्द्र को उसकी कुछ खबर नहीं थी, क्यों कि निद्रादेवी का उस समय उनपर अधिकार था, लेकिन वे स्वप्नावस्था में कुछ विचित्र ही स्वप्न देख रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दशवाँ परिच्छेद

प्रातः काल प्रभाकर के उदयकाल के कुछ प्रथम ही महाराज हरिश्चन्द्र पलंग से उठकर अपने नित्य कर्मों से निवृत होकर राजसभा में आ उपस्थित हुए। महाराजा के कई दिन बाहर रहने के कारण अनेक बातों का विचार करना स्थगित कर दिया गया था, इसलिये उसदिन महाराज को सभा कार्य से शीघ्र अवकाश नहीं मिला।

महाराज हरिश्चन्द्र अत्यन्त उदार सत्यवादी और कर्म निष्ठ थे, यद्यपि वे महारानी शैव्या के प्रेमपाश में बँध कर पहले कुछ दिनों तक राजकार्य पर उतना ध्यान नहीं देते थे किन्तु शैव्या के सुयत्न से उनकी वह कलंककालिमा नहीं रहने पायी थी। उस समय उनके समान धर्मपरायण कर्तव्यपटु और सत्यनिष्ठ कोई दूसरा सम्राट् नहीं था।

उस समय उनकी राजनीति की बड़ीहीप्रशंसा हो रहीथी। उनकी राजसभा बड़ी सुसज्जित थी, अनेक प्रकार के सुन्दर चित्रों से सभास्थल सजाया हुआ था, बहुमूल्य रत्नों से जड़े स्तम्भ सौंदर्यश्री को द्विगुणितकर रहे थे। महाराज का रत्न जड़ित सिंहासन सभा के मध्य में शोभता था। उस दिन की सभा कुछ अपरान्त तक लगी रही, स्थगित विषयों पर विचार होने के बाद, सभा भंग की गई, लोग सभास्थान से बाहर होने को ही थे कि द्वारपाल ने महाराज के निकट आकर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

निवेदन किया,-"महाराज,महर्षि विश्वामित्र द्वार पर उपस्थित हैं। वे सभा में आने की इच्छा प्रगट करते हैं।"

द्वारपाल की बातें सुनते ही महाराज आसन पर बैठ गये और मंत्री प्रभृति को भी कुछ देर ठहरने कहा। द्वारपाल ने ज्योंही ऋषिश्रेष्ठ को सभा में चलने का अनुरोध किया त्योंहीं वे शीघ्रता पूर्वक सभा की ओर अग्रसर हुए। उनको द्वार में आते देख महाराज हरिश्चन्द्र आसन से उठ खड़े हुए, उनके उठते ही सभास्थित सभासद भी खड़े हुए। ज्योंही महर्षि विश्वामित्र का सभास्थान में प्रवेश हुआ त्योंहीं आगे बढ़ महाराज ने चरण छूकर प्रणाम कर पाद्य अर्घ्य के लिये आसनारूढ़ होने का उनसे निवेदन किया। प्रथम विश्वामित्र जी की मूर्ति स्वभावतः ही उग्र ! दूसरे क्रोध से वह और भी भयंकर हो रही थी, महाराज उनकी उस मूर्ति को देख भयभीत हो रहे थे। महाराज के निवेदन पर ऋषिराज ने क्रुद्ध हो कर कहा,-"महाराज, मैं पाद्य अर्घ्य का भूखा नहीं हूँ, आज मैं आपकी सभा में न्याय कराने आया हूँ, आप आसनारूढ़ हों और मेरे मामले का निवटारा कर दें।"

महाराज उनकी बातों से और भी भयभीत हो कम्पित स्वर में बोले,-"मामले का निवटारा तो हो ही जायगा, पहले आप आसन तो ग्रहण करें। जिस मूर्ख ने आप की अवज्ञा की है उसे उचित दण्ड दिया जावेगा। सेवक को पाद्य अर्घ्य से वंचित करने की कृपा न करें, कृपया आसन पर आसीन हों।"

महाराज की प्रार्थना पर विश्वामित्र जी आसन पर विराजे, महाराज ने पाद्य अर्घ्य से उनका यथोचित सत्कार किया, पीछे अपने राजसिंहासन पर जा बैठे। उसके बाद विश्वामित्र

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ने कहा,-"महाराज, अब मेरा अभिप्राय श्रवण कीजिये; इन दिनों मेरे आश्रम में बड़ा अत्याचार हो रहा है। आज कई दिन हुए कि कई अप्सरायें जिन्होंने मेरे अरण्य के लतापुष्पों को छिन्न भिन्न किया था, मेरे श्राप से लताओं में बँधी हुई थी, न मालूम किस दुष्ट ने मेरे बिना पूछेही उन्हें मुक्त किया। अपने अस्त्रों से लताओं को काट कर छिन्न भिन्न कर दिया है, आप उसका अनुसंधान कर उसे उचित दण्ड दें।"

महाराज हरिश्चन्द्र मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र की बातें सुनकर विस्मित हो उठे-"सर्वनाश हुआ चाहता है, इसका अपराधी तो मैंही हूँ" मनमें इतनी बात कहने के बाद भयभीत हो हाथ जोड़ बोले,---"ऋषिराज! इसका अपराधी स्वयं मैं हूँ, किन्तु मैं जितना दोषी समझा जाता हूँ उतना दोषी नही हूँ कारण, मुझे उन अप्सराओं के विषय में और कोई बातें ज्ञात नही थीं, यदि ज्ञात होती तो मैं कभी इतनी धृष्टता नहीं करता। खैर जो हो, यदि इस कार्य्यमें मेरा कुछ अपराध समझा जाता है तो सेवक क्षमा का प्रार्थी है, क्षमा करें।"

विश्वामित्र क्रोधित हो कर बोले,-"अज्ञान! अज्ञान को क्षमा कैसी, यह बात भलेही किसी दूसरे के विषय में कहीं जा सकती हैं, आप अज्ञान हो कर राजभार कैसे ग्रहण किये हुए हैं? अज्ञान को यह दायित्व पूर्ण पद कभी स्वीकार नहीं करना चाहिये, यदि ऐसा है तो आप शीघ्रही किसी योग्य व्यक्ति को अपना राजभार सौंप अलग हो जाइये, मैं निश्चिंत हो जाऊंगा।"

महाराज हरिश्चन्द्र-ऋषिवर! मैंने भयातुरों की रक्षा कर इसपवित्र पद को कलंकित किया तो नहीं है, तब मुझे यदि अयोग्य ठहरा कर इस पद से हटाना ही ठीक समझा जाता है तो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महाराज हरिश्चन्द्र ने अपना राज-ताज विश्वामित्र को दान कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust

मुझको भी इसमें कोई आपत्ति नहीं है, भले हो कोई योग्य व्यक्ति इस दायित्व पूर्ण पद को ग्रहण कर मुझे अलग करदे ।

विश्वामित्र--तुम अपने राजधर्म की प्रशंसा करते हो, करो, मैं भी उसको स्वीकारता हूँ, उसी राजधर्म के अन्तर्गत दान कर्म भी है। अस्तु, अविलम्ब अपना राज मुझको दान कर दो, क्या इसके लिये प्रस्तुत हो ?

म०--हरिश्चन्द्र--हाँ, मैं तैयार हूँ, आप कृपा पूर्वक दान लेने के लिये तैयार हो जांय; मैं अभो पृथ्वीदान कर दूँगा "। इतना कहने के बाद ही महाराज ने एक भृत्य को बुलाकर स्वर्णपात्र, जल, तिल कुश; लाने कहा, यह देख विश्वामित्र आश्चर्यित होकर रह गये। उन्होंने कभी स्वप्न में भी नहीं बिचारा था कि सूर्यबंश प्रदोप महाराज हरिश्चन्द्र एकही बात में उन्हें राजदान करने को तैयार हो जायँगे, वे महाराज हरिश्चन्द्र को प्रकृति पर आश्चर्य करते थे। उन्होंने यह भी बिचारा कि आज हरिश्चन्द्र अहङ्कारयुक्त दानी होने की बातें करता है, तो मैं भी आजही उसका मद चूर्ण कर के ही छोड़ूँगा।

आज्ञा पाते ही सेवक ने सब चीजें महाराज के आगे ला रखीं, महाराज हरिश्चन्द्र ने उसी समय बिधि विधान के साथ अपना सम्पूर्ण राज विश्वामित्र जो को दान कर दिया। पृथ्वी दान देने के बाद महर्षि विश्वामित्र ने कहा,—"महाराज, इतने बड़े दान की दक्षिणा भी चुकाही दीजिये। अन्यथा दान का फल नहीं मिलेगा।"

महाराज हरिश्चन्द्र ने कहा,—"आप चिन्ता न करें इसकी पूरी दक्षिणा आप को अभी चुका दी जाती है।"

इतना कहनेके बादही कोषाध्यक्षको बुलाकर कहा,—"एक सहस्र स्वर्ण-मुद्रा ऋषिश्रेष्ठ को प्रदान करो।" महाराज

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की बातें सुनतेही विश्वामित्र जी के क्रोध का पारा बहुत ऊपर बढ़ता हुआ तापबिन्दु तक पहुँच गया, वे उस समय उत्तेजित हो कर बोले,—"महाराज, तुम किसके भण्डार से धन लाने कहते हो! सम्पूर्ण पृथ्वी तो तुमने दान करहीदी, अब भण्डार में तुम्हारा क्या अधिकार रहा! इस प्रकार अज्ञानी की तरह क्यों बातें करते हो?"

ऋषिश्रेष्ठ विश्वामित्र की बातें सुन महाराज चमक उठे, उनको स्मरण हो आया, उस समय ऋषि ने पुनः कहा,—"अब मौन क्या होते हो, दक्षिणा देने की युक्ति निकालो। स्त्री पुत्र के अतिरिक्त और किसी चीज पर अब तुम्हारा अधिकार नहीं रहा।"

महाराज चञ्चल हो रहे थे, उनको अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने की बड़ी चिन्ता हो रही थी। पृथ्वीदान के साथही उन्होंने विश्वामित्र को सर्वस्व दान कर दिया था, अब दक्षिणा दी जाय तो कहाँ से, इसी की चिन्ता से वे व्यथित थे। अन्त में उन्होंने विश्वामित्रसे प्रार्थना की कि महाराज! मुझको दक्षिणा चुकाने के लिए पन्द्रह दिन का समय दें, इस बीच में मैं किसी उपाय से आप से उऋण होने की चेष्टा करूँगा।"

विश्वामित्र गम्भीर गर्जन से क्रोध युक्त बोले,—"महाराज, यही तुम्हारा अभिमान है। इसी अभिमानसे तुम अपनेको निर्दोष समझते थे। क्या इसी ज्ञान से तुमने सम्पूर्ण पृथ्वी का शासन डोर अपने हाथ में लेने की धृष्टता की थी? ऋषि, मुनि के आश्रम की रक्षा करना क्या तुम्हारा कर्तव्य नहीं था? खैर, मैं तुमको १५ दिन की अवधि देता हूँ, यदि इतने समय तक में तुम दक्षिणा नहीं चुकाओगे तो स्मरण रक्खो, शाप दे कर सूर्य्य-वंशियोंका नामो निशान मिटा दूंगा।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust

विश्वामित्र के क्रोध पूर्ण वचनों को सुन कर महाराज सिहर उठे। हृदय से ईश्वर को स्मरण कर बोले,—"महाशय, आप की आज्ञा को मैं सिर माथे चढ़ाता हूँ, मैं किसी प्रकार आप की दक्षिणा आप को चुका दूँगा।"

इतना कह वे सभा परित्याग कर चलने लगे, उस समय विश्वामित्र उन्हें रोक कर पुनः बोले,—"आज से इस राज्य पर मेरा अधिकार हुआ, तुमको एक दिन की अवधि देता हूँ। अपने स्त्री, पुत्र को ले कर मेरा राज्य छोड़ कर कहीं अन्यत्र चले जाओ। कल से मैं राज्यशासन का कोई नया प्रबन्ध करूँगा।"

महाराज कुछ देर विचार करने बाद बोले,—"महाशय, आप को इसकी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं; हरिश्चन्द्र प्राण से अधिक अपने बचन को ही समझता है। आप को मालूम होगा कि काशी धाम शंकर के त्रिशूल पर है। पृथ्वी से अलग समझा गया है, मैं कल ही उसी प्रवित्र काशी नगरी को अपना आश्रम बनाऊँगा, आप से केवल यही प्रार्थना है कि यदि भूल से भी मुझसे अपराध हो गया हो तो क्षमा करें।" इतना कहने के बाद ऋषि को प्रणाम कर महाराज वहाँ से चले गये।

जिस समय सभा में ये सब बातें हो रही थीं उस समय महाराज के कर्मचारी गण उन क्रोधी विश्वामित्रजी पर असन्तुष्ट हो मन ही मन उनके व्यवहार पर उनकी निन्दा कर रहे थे।

ज्योंही महाराज सभास्थान को छोड़कर अन्तःपुर चले गये त्योंही कर्मचारीगण भी सभा से बाहर चलने को तैयार हुए। उन सबों को सभा छोड़ने की चेष्टा करते देख विश्वामित्र जी ने कहा,—"कर्मचारीगण, आज से इस राज्यसिंहासन का अधिकारी मैं हुआ, आज से तुमलोगों को मेरी सम्मति के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अनुसार कार्य करना पड़ेगा, खैर, अभी जा कर विश्राम करो; मैं कल तुमलोगों से मिल कर राज–प्रबन्ध का नवीन नियम बनाऊँगा।"

कर्मचारी गण तो उनसे असन्तुष्ट हो ही रहे थे; उसी समय उत्तेजना पूर्वक बोले,—"हम लोग भी कल आप का राज छोड़ कर चले जायँगे, जिस राज में महाराज हरिश्चन्द्र के लिये स्थान नहीं है उस राज में हमलोग पाँव भी रखना उचित नहीं समझते। आप नये सिरे से नये कर्मचारियों को नियुक्त कर नवीन नियम से राज कीजिये।"

कर्मचारियों को बातों से विश्वामित्र जी को पुनः क्रोध हुआ; पर कुछ बोले नहीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ग्यारहवां परिच्छेद ।

सभा स्थानपरित्याग करनेके बाद महाराज अंतःपुर में गये; पहले उन्होंने शैव्या से मिलने की इच्छा से महारानी के निवास-गृह की ओर ही अग्रसर होना उचित समझा, उस समय उनके दिव्य मुखमण्डल पर चिन्ता की छाया दिखा रही थी। विश्वामित्र को उन्होंने अपनी सारी पृथ्वी दान करदी, अपने पास फूटी कौड़ी तक भी नहीं रखी; इसकी उन्हें तनिक भी चिन्ता न थी। केवल इसीकी गहरी भावनामें पड़े थे कि "किस प्रकार उनकी दक्षिणा चुकायी जाय, साथही प्राण प्यारी शैव्या प्राणाधार रोहितको किसके आश्रय में रखूँ? मेरे कारण ही देवाङ्गणाओं को भी लज्जित करने वाली कोमल-कलेवरा शैव्या और कमनीय कांतिवाले कुमार रोहित को कठोर कष्ट उठाना पड़ेगा। उस समय मैंने इन सबों का कुछ भी ख्याल नहीं किया।"

इसी प्रकार चिन्ता करते हुए महाराज शैव्याके गृहमें जा पहुँचे। गृह में महारानी को न पाकर उनके अनुसन्धान में पुनः उपवन की ओर गये। समय दोपहर का था। दिनमणि दिवाकर गगनाङ्गन के मध्य में पहुँच चुके थे। उनकी चमकती हुई किरण उस उपवन के सुभग सरोवर की तरङ्गों के साथ अठखेलियाँ करती हुई चमक रही थी। शीतल समीर उपवन के विकसित सुमनों के सौरभ से सौरभित हो धीरे धीरे प्रवाहित हो रही थी। महाराज कुछ देर सरोवर किनारे खड़ा रह उस दृश्य को देखते रहे, पश्चात पुनः शैव्या की खोज में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लता-कुंज की ओर गये। अनेक लताकुञ्जों में अपनी प्यारी सहधर्मिनी को ढूँढ़ते वे आगे बढ़ गये। कुछ आगे बढ़ने पर उनकी दृष्टि कुमार रोहित पर पड़ी, वे उसी समय अग्रसर हो वहाँ उपस्थित हो गये। रोहित का भोला भाला मुख मण्डल देखते ही उनकी आँखें अश्रुपूर्ण हो गयीं, हठात् उनकी दृष्टि महारानी शैव्या पर जा पड़ी। देखते हैं, महारानी शैव्या एक सुग्गे के बच्चे को लेकर रोहित को दे रही हैं, रोहित कौतुक भरी दृष्टि से उस सुग्गे के बच्चे की ओर देखता हुआ उसे पकड़ना चाहता है, ज्योंही रोहित उसको पकड़-ना चाहता त्योंही वह उसको काटना चाहता है। यह देख रोहत अपना हाथ खींच लेता और खिल खिलाकर हंसने लगता। इसी प्रकार कुछ देर खेल करते रहने के बाद एक बार उस बच्चे सुग्गे ने रोहित की अंगुली पर अपनी पैनी चोंच चला दी, कुमार हाथ खींचते खींचते बच गये, यह देख शैव्या उस सुग्गे को डांट कर बोली,—"क्यों रे अधम सुग्गा, तू ने मेरे लाल को काटने का दुस्साहस क्यों किया?"

उत्तर में सुग्गा शैव्या की अंगुली भी काटने को प्रस्तुत हुआ।

महाराज उन सबों के निकट ही खड़ा हो यह दृश्य देख रहे थे, किन्तु उन दोनों माता पुत्रोंमें से किसी ने भी अभी तक उनको नहीं देखा था।

उसी समय महाराज धीरे धीरे उनसबों के आगे जा खड़े हुए। महाराज को देख शैव्या रोहित से हँसती हुई बोली,—"वत्स, आओ चलो, जब महाराजने तुम्हारे लिये हरिणशावक नहीं ला दिया तो हम लोग भी उनको यह सुग्गा नहीं देंगे।"

माता की बातें सुन रोहित भी हँसने लगा। यद्यपि माता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इसे हाथ पकड़ खींच रही थी, किन्तु पिता का मुख देख वह खिलखिलाता हुआ खड़ा ही रहा। उस समय महाराज से और नहीं रहा गया; वे शीघ्रता पूर्वक रोहित को गोद में उठा कर प्रेमपूर्वक उस का मुख चूमने लगे।

उनको ऐसा करते देख शैव्या बोली,--"आपने मेरे वत्स को क्यों उठा लिया ?"

इस बार महाराज अनमने रहने पर भी ऊपरी हँसी के साथ बोले,--"प्यारी, यह मेरी अन्तिम भेंट है; अभी मैं तुम से विदा मांगने आया हूँ।"

शैव्या ने देखा, क्या सत्यही सर्वनाश हुआ चाहता है। पतिदेव को तो मैं कभी इस प्रकार चिन्तित नहीं पाती थी क्या मेरे ही व्यवहारसे तो ये रुष्ट होकर घर छोड़ने को तैयार नहीं हो गये ?

इस प्रकारका बिचार मनमेंआतेही शैव्याके मुखमण्डलपर पश्चात्ताप की रेखा पड़ गयी। उसके सब हास परिहास दूर दब गये; वह उसी समय करुणामयी मूर्ति हो स्वामी का हाथ पकड़ बोली,--"नाथ ! इस प्रकार आप को चिन्ताग्रस्त देख दासी को बहुत दुःख हो रहा है, यदि सेविका से अपराध हुआ होतो क्षमा करें।"

महाराज, शैव्या को देख और उसकी बात सुन आश्चर्यित हुए। उनके मन को सारी शंकायें दूर हो गयीं, शैव्या के निश्चल प्रेम में मुग्ध हो महाराज मौन रहे।

पति को मौन देख शैव्या पुनः बोली,-"नाथ, कृपा कर बोलें, आपको हुआहै क्या ? मैं बड़ी विह्वल हो रही हूँ। मैं तो आपके चरण की सेविका हूँ, आपके बिना मेरा और है कौन ? विलम्ब न करें, शीघ्र कहें।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शैव्या की करुणामयी बातें सुनकर महाराज की आँखें पुनः अश्रुपूर्ण हो गयीं, यह देख शैव्या और घबड़ायी, पति के चरणों में लिपट कर बोली,-"नाथ, आपको दुःखी देख मेरा हृदय फटा जा रहा है शीघ्र कहें, क्या हुआ ?"

इस बार महाराज बोले,-"प्यारी ! मैंने बचन बद्ध होकर आज महर्षि विश्वामित्र को सारी पृथ्वी दान कर दी। तुम लोगों के लिये भी कुछ विचार नहीं किया। अब उनके राज्य में हम लोगों को रहने का भी अधिकार नहीं है। अस्तु, कल तुम दोनों को तुम्हारे पिता के घर पहुँचा कर मैं पृथ्वी से बाहर काशी नगरी में जा अना शेष समय व्यतीत करूँगा।"

इस बात से मानो शैव्या के सिरपर वज्र पात सा हो गया, "सारी पृथ्वी मुनि को दान कर दी" इसकी उन्हें तनिक चिन्ता नहीं हुई "तुम को तुम्हारे पिता के घर रख मैं काशी नगरी में रह अपना शेष समय बिताऊँगा" यही वाक्य शैव्या के सिर वज्रपात का कार्य करता था। कुछ देर मौन रह शैव्या बोली,-"नाथ, इस दासी से कौनसा ऐसा भारी अपराध हुआ कि आप इसे अपनी सेवा से वंचित करने को तैयार हैं ? दासी के लिये आप के चरणकंज की सेवा ही सब कुछ है इसी को यह स्वर्ग सुख समझती है और इससे वंचित रहना ही उसके लिये नरक यातना है।" इतना कहकर महारानी दीनदृष्टि से महाराज के मुखमण्डल की ओर देखने लगीं उन की उस मूर्ति को देखकर हरिश्चन्द्र को प्रतीत हुआ मानो सहानुभूति ही सजीव मूर्ति धारण कर उनके आगे आ खड़ी हुई है, वे प्रेम पूर्वक शैव्या का कर-कंज पकड़ कर बोले, "हाय प्यारी, इतने दिनों तक तुमने अपना यह भाव कहाँ छिपाया था, या मैं ही भूल रहा था; आज तक तुमको पह-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चान ही नहीं सका ।" इसके बाद ही शैब्या उनको रोक कर बोली,—"नाथ, मुझसे भारी अपराध हुआ, किन्तु मैंने जो कुछ किया है वह सब किसी दूसरे कारण से नहीं ।"

हरिश्चन्द्र–मैं सब समझ गया । प्यारी! मेरी ही भूल हुई मैंने यथार्थ में तुमको नहीं पहचान सका था, जो कुछ हो अब भी मुझको तुम्हारी जैसी स्त्रीरत्न का अभिमान है ।

शैब्या—आप मुझको ऐसी बातें कह कर लज्जित न करें यह दासी श्रीचरण की सेविका है, इसको इस सेवा से कभी वंचित न करें, यही प्रार्थना है ।

म० हरिश्चन्द्र—मेरे साथ रहने से बहुत कष्ट होगा?

म० शैब्या—आपकी सेवा से ही मैं प्रसन्न रहूँगी ।

म० हरिश्चन्द्र—[शैब्या को हृदय से लगाते हुए] प्यारी, मैंने समझा था कि विश्वामित्र जी को सर्वस्व दान कर दिया लेकिन नहीं मेरा सर्वस्व अभी मेरे ही पास है, चिन्ता नहीं, तुम्हारे साथ वृक्ष की छाया में रहकर भी सुखी रहूँगा; किन्तु कुमार रोहित को कहाँ रखा जायगा, यह सुकुमार बालक तो हम लोगों के साथ रह कर कष्ट सहन नहीं कर सकेगा। मेरी इच्छा होती है कि इसको ननिहाल में भेज दूँ ।

शैब्या—'नाथ, मैं इसका प्रतिवाद करती हूँ, पुत्र को ननिहाल भेजना ठीक नहीं, जिसका लड़का रहता है उसी को अच्छा और प्यारा लगता है। दूसरी बात यह है कि इस समय हम लोग राह के भिखारी हो गये हैं; हमलोगों की अवस्था पर सब नाक भौं सिकोड़ेंगे, अपमान करेंगे, ऐसी अवस्था में रोहित का हम लोगोंके साथ रहना ही ठीक होगा।

म० हरिश्चन्द्र-मैं तुम्हारी सम्मति को सहर्ष स्वीकारता हूँ । यथार्थ में तुम्हारा अनुमान अक्षरशः सत्य है, लेकिन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एक बात और कहने को है, वह यह कि विश्वामित्र जी बड़े क्रोधी हैं। उनके श्राप का डर रहता है। मैं अभी तक उनसे उऋण नहीं हो सका हूँ, दक्षिणा के एक सहस्र स्वर्णमुद्रा अभी चुकाने को बाकी है, उसके लिये पन्द्रह दिनों की अवधि माँग ली है, किन्तु उनके राज्य को कल हीं छोड़ देने का स्थिर हो चुका है। इसमें किसी प्रकार भेद होने से वे अवश्य श्राप दे देंगे।

शैव्या—नाथ, आप इसकी चिन्ता न करें, घर चलें। वहाँ चलकर इसकी युक्ति सोच निकाली जायगी, दासी आपकी अर्द्धांगिनी है। अस्तु, यह अर्द्धांगिनी का ही कार्य कर सुख दुःख में साथ देगी। कल मुनिराज का राज छोड़ दिया जायगा। दक्षिणा भी चुका दी जायगी।

इतना कह वह महाराज के पैर की धूलि मस्तक में लगा रोहित को गोद में उठा, उसका मुख चूमती हुई पति के साथ उपवन से राजप्रासाद को चली गयी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बारहवां परिच्छेद ।

इधर का तो यह समाचार था, उधर अयोध्या नगरी की कुछ और ही अवस्था हो रही थी, प्रजाओं में बड़ी हलचल मच रही थी, वे सब अत्यन्त दुःखित हो रही थीं। कोई कोई विश्वामित्र को बुरा भला कह रहे थे, कोई कोई महाराज के इस कार्य की निन्दा करते। उन सबों का भी विचार हो रहा था कि यदि महाराज नगर से चले जायँगे, तो हम लोग भी नगर छोड़ उनका ही अनुगामी होंगे।

प्रातःकाल सूर्यदेव के उदय होने के बाद ही अयोध्याधिपति महाराज हरिश्चन्द्र अपनी जीवन-संगिनी महारानी शैव्या तथा पुत्र रोहित के साथ राजप्रासाद को परित्याग कर नगर छोड़ने को तैयार हुए। ज्योंही नगर-बासियों को यह सूचना मिली त्योंही नगर-निवासी बालक, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष, सब के सब उनको देखने दौड़ पड़े। उस समय महाराज और महारानी तथा राजकुमार की वेशभूषा देख मनमें सहसा दुःख का आक्रमण हो ही जाता था। यथार्थ में उनकी अवस्था करुणाजमक थी, महारानी शैव्या ने एक साधारण वस्त्र सौभाग्य सिन्दूर और कर-कंकण के अतिरिक्त और कुछ नहीं पहना था, कुमार रोहित की भी वही अवस्था थी, उसको भी कोई भूषण नहीं था, महाराज स्वयं एक वस्त्र पहने हुए थे। उनकी यह अवस्था देख प्रजायें खड़ी खड़ी आँसू बहाने लगीं। महाराज उनको सम्बोधन कर बोले,—"तुम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लोग अपने अपने घर लौट जाओ। कहीं मुनिराज इससे भी न क्रोध कर बैठें, मेरे लिये किसी प्रकार की चिन्ता नहीं मुझको इतने ही दिनों तक यहाँ राज्य करने को था। विश्वामित्र जी के शासनकाल में तुम सबों को किसी प्रकार का कष्ट होने की आशा नहीं है।"

यद्यपि महाराज प्रजाओं को इसी प्रकार सांत्वना दे रहे थे, किन्तु स्वयं वे भी इस बिछोह से अत्यन्त अधीर हो रहे थे, उनकी अधीरता राज्य के लिये नहीं थी, प्रजाओं के प्रेम से ही वे अधिक विह्वल हो रहे थे। कुछ देर बोध-प्रबोध देकर महाराज ने नगर निवासियों को वापस किया और आप स्त्री. पुत्र के साथ नगर से बाहर हुए।

विधि विधान भी विचित्र है। राव से रंक और रंक से राजा होते देर नहीं लगती, जो महाराज हरिश्चन्द्र कल संसार के सम्राट् थे आज वही भिक्षुकवेष में नगर से बाहर जा रहे हैं, आज उनके पैर में पदत्राण भी नहीं है। जो महारानी शैव्या कभी सहस्त्रों सेविकाओं से सेवित थीं आज वही दरिद्रवेष में महाराज के पीछे नंगी पाँव चल रही, जो राजकुमार रोहित कभी स्वर्ण-हिंड़ोले पर झूला करता था, आज वही माता के आगे आगे पैदल चल रहा है। ईश्वर! तेरी करतूत का पता पाना सहज नहीं, बल्कि बिलकुल असंभव है।

जिस दिन महाराज हरिश्चन्द्र अयोध्या नगरी को छोड़ काशी को चले, उसके दूसरे ही दिन अयोध्या में बड़ी गड़बड़ी मची। ऊषाउदय के प्रथम ही झुण्ड के झुण्ड जटा जूट वाले तुम्बा चिमटा धारी सन्यासियों ने नगर में प्रवेश किया, नगर निवासियों ने जबतक अपने अपने घर का फाटक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नहीं खोला था तब तक वे सब सड़क परही अपना आसन जमाये हुए थे, ज्योंही नगरवासियों ने घरका फाटक खोला त्योंही उन सबोंने "गुरुदेव की जय" करते हुये जिस तिस के घर में घुसकर अपना आसन जमा दिया और लगे धुनि जलाकर कंकड़ चढ़ाने। नगरवासी यह देख घबड़ा उठे उन सबों ने कहा,—"क्यों महाराज, आप सब इस प्रकार बलपूर्वक हम लोगों के घर में क्यों अधिकार जमाने को उतावले हो रहें हैं ?"

उत्तर में उन साधुओं ने कहा,-"अब तुम लोग अलग हट जाओ, जब तक महाराज हरिश्चन्द्र का राज्य काल था तब तक तुम लोग जो चाहते करते थे, अब यहां हम लोगों के गुरुदेव बिश्वामित्र का राज्य हुआ। अस्तु अब राजप्रबन्ध हम लोगोंही के हाथ रहेगा। तुम लोगों की अब कोई आवश्यकता नहीं।" उन लोगों की बातोंसे नगरवासियों को उस रहस्य का पता लग गया, वे लोग इससे दुःखित नहीं हुए। जिस राज्य में हरिश्चन्द्र राजा नहीं क्रोधी ऋषि के हाथ में जिसका शासनडोर पड़ा वहाँ सुख और शांति कहाँ? नगर—निवासी चुपचाप उनके राजप्रबन्ध को देखने लगे।

तपस्वी संन्यासियों को उस गगन—चुम्बी अट्टालिकाओं में रहने का सौभाग्य स्वप्न में भी कभी प्राप्त नहीं हुआ था इस लिए वे धवल धाम उनके लिए झंझट से हो गये, न तो उन सबों को तख्तपोश, पलंग प्रभृति पर सोने का अभ्यासही था और न कभी ऐसी राजसी ठाठ देखा ही था। इस लिये वे उसको उचित रूप से कार्य्य में नही ला सके। नीचे सोते और रत्न जड़ित पलंगों पर पूजा बन्दनादि किया करते थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इधर महर्षि विश्वामित्र के शिष्यों का तो यह व्यवहार था उधर महर्षि जी के राजशासन की बातें भी सुन लीजिये।

महाराज हरिश्चन्द्र के जाने के बाद भी राजकार्य उनके सुयोग्य मंत्री द्वारा चलही रहा था, दूसरे दिन महर्षि विश्वामित्र के आने पर मंत्री ने आदर पूर्वक राज--सिंहासन पर उन्हें आरूढ़ किया। सिंहासन पर बैठने के बादही विश्वामित्र ने कहा,—"तुम लोग आज ही राज कार्य का भार मेरे चेलाओं को सौंप दो, मैं राज का नया प्रबन्ध करूँगा।"

मंत्री ने उत्तर में कहा, —"महाशय, अभी राज आप का है आप प्रसन्नता पूर्वक इच्छानुसार इसके कार्य का प्रबन्ध करें मुझको अथवा और किसी कर्मचारी को इसमें कोई आपत्ति नहीं है और न होगी।"

इतना कहने के बादही उन्होंने अपना बुझौता मुनिराज को दे दिया और कर्मचारियों के साथही मंत्री ने उसी समय अयोध्या को दण्डवत् कर अपने महाराज का अनुशरण किया।

महर्षि विश्वामित्र पहले राजा थे; इस लिए उनको इस बात का अभिमान था कि मैं उचित रूप से राज—कार्य चला लूँगा, किन्तु वर्षोंसे इस झमेलेसे अलग रहनेके कारण उनसे यथार्थ रूप से कार्य नहीं चल सका। राज्य में अशांति उठ गयी, प्रजाओं के अभियोग दिन दूने रात चौगुने बढ़ने लगे विश्वामित्र जी यथार्थ विचार कर ही नहीं सकते। उचित विचार नहीं होने से प्रजाओं में असन्तोष की मात्रा वर्सात की बाढ़ की भाँति किनारा छोड़ बढ़ने लगी। दिन भर प्रजाओं का अभियोग निवारण करने में ही ऋषि जी व्यस्त रहा करते थे और सब कार्य किनारे पड़ गये थे। जब विश्वामित्र जी शासन करते थे तब संरक्षण की ओर नहीं देख सकते

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और जब संरक्षण की ओर ध्यान देते तो शासन डोर ढ़ीला पड़ जाता था। आय का हिसाब रखते तो व्यय का लेखा भूल बैठते और यदि व्यय को सम्हालते, तो आय का ही पता नहीं रहता। पूजा पाठ, जप यज्ञ आदि धर्म कार्यों ने तो उनसे असहयोग ही कर लिया था। इससे भी वे अधिक तंग रहने लगे। उधर प्रजायें भी राजा की नीति को देख कर मनमानी घर जानी करने लगी। सम्पूर्णं साम्राज्य में अशांति छा गयी। विश्वा मित्र जी उसको संभाल नहीं सके। उधर उन ब्रह्मचारियों के अल्लढ़पना से और ही गुल खिल रहा था, लोग खुल्लम खुल्ला विश्वामित्र की निन्दा करने लगे। महाराज हरिश्चन्द्र के लिए उस समय भी वे सब आठ आठ आँसू बहा रहे थे। राजप्रासाद तपोवन जैसा प्रतीत होने लगा था। भंग भवानी का खूब सत्कार हो रहा था, शामों सुबह ब्रह्मचारी गण उनका खूब आह्वान किया करते थे, अस्त्र शस्त्रों में जंग लग गयी थी, वे सब चिमटियों से ही अपना कार्य चला लिया करते थे। नगररक्षा का कार्य बिलकुल ही ढीला पड़ गया था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तेरहवां परिच्छेद

अस्सी और बरुणा के संगम स्थान पर ही स्वर्ग सहोदरा पवित्र काशी नगरी बसी हुई है। उस का अनुपम सौन्दर्य चित्त पर ऐसा प्रभाव डालता है कि जी चाहता है सर्वदा वहीं निवास करें। यथार्थ में शंकरशूलशिखर पर स्थित काशी नगरी अमरावती ही समझी और कही जाती है। जिस पवित्र नगरी को देखतेही पाप ताप सब दूर भाग जाते हैं उसको देवपुरी कहने में अत्युक्ति नहीं हजारों देव-मन्दिरों में जहाँ नित्य वेद-ध्वनि हुआ करती है जहां अनेकों अतिथि शालायें, धर्मशालायें हैं, जिनमें हर देश के आये हुये यात्री रहते और धर्मचर्चा में ही समय बिताते हैं, ऐसी सुर-सरिता के पुलीन पर ब्रह्मचारी तपस्वियों की हजारों कुटियाँ उसकी पवित्रता को परिदर्शित करती हुई दर्शकों के मन को आनन्दित करती हैं।

पवित्र वाराणसी और अस्सी संगम में हजारों सुभग सीढ़ियाँ सुहाती हैं। अम्बर स्पर्शी मन्दिरों में शिखर पर स्वर्ण के कलशों पर पताकायें फहराती हुई उसके पावन यश को आकाश तक पहुँचा रही हैं। देव--मन्दिरों के शंख घण्टे और नगाड़े की ध्वनि से सम्पूर्ण नगरी गूँजती रहती है सुरसरिता की सुभग धारा भी उस पवित्र नगरीके निकटही प्रवाहित हो रही है। बाराणसी के किनारे बँधे हुए घाट के आगे एक छोटा सा मैदान है, जिसके मध्य में एक पुराना वट वृक्ष अपनी लम्बी लम्बी शाखा फैलाये था। वटवृक्षकी जड़

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महारानी शैव्या जल लाकर अपने पति देव को दे रही हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से लग कर एक बड़ा पक्के का चबूतरा बना था। जब तब रात में यात्रीगण उस चबूतरे पर विश्राम कर लेते थे।

ऊषा के उदय का समय हो रहा था। किन्तु अभी तक उस नगरी की सड़कों पर कोई मनुष्य आता जाता नहीं दिखाता था, शीतल मन्द समीरें चल रही थीं, वरुणा कलकल नाद से अग्रसर हो रही थी, उसी समय उस वृक्ष के नीचे चबूतरे पर सोया हुआ एक पथिक "जय विश्वनाथ जी" करता हुआ उठ बैठा, उसके निकट ही एक युवती जो कुछ पहले ही उठ बैठी थी हरिनाम जप रही थी, युवती की गोद में सिर रखे एक बालक भी सोया था। बिल्कुल अन्धकार दूर नहीं होने के कारण निकट में बैठे हुए व्यक्ति का मुख-मण्डल साफ साफ नहीं दिखाता था।

युवक पथिक ने निकट में बैठी हुई युवती से कहा,—"प्यारी शैब्या! मुझको प्यास मालूम होती है; तुम ठहरो, मैं नदीकिनारे जा कर जलपान कर प्यास बुझाआऊँ।"

युवक की बात सुन कर युवती बोली,—"नाथ! इस सेविका के रहते ही आप अपने से जल ला कर पान करेंगे? यद्यपि आप के अन्यान्य सैकड़ों दास-दासियाँ इस समय आपकी सेवा से वंचित हैं, किन्तु यह दासी तो रात दिन सेवा में लगी रहने के लिये ही अनुगामिनी हुई है।"

इतना कह वह अपनी गोदसे बालक का सिर धीरे धीरे युवक की गोद में रख आप वरुणा नदी के बँधे हुए घाट पर आ धीरे धीरे सीढ़ियों से नीचे उतरी और दोनों हाथों को जोड़ अंजलि में जल ला बड़ी सावधानी से सीढ़ियों पर चढ़ती हुई ऊपर आयी और उसने अपने पतिदेव को जल पिलाया, महाराज हरिश्चन्द्र बहुत प्यासे थे। इस लिए शैब्या को अंजलि में जल लाने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के लिए कई बार जाना और आना पड़ा। एक वह समय था कि स्वर्ण की सुराही में महाराज के लिये सुवासित जल रखा रहता था और आज एक ऐसा समय आ उपस्थित हो आया है कि जल रखने के लिए उनके पास मिट्टी के भी पात्र नहीं मिलते हैं। जो महारानी शैब्या कभी अपने हाथ से जल डाल कर भी नहीं पीती थीं आज वही पत्थर के बँधे हुए घाटों पर अंजलि में जल लाती हैं। महाराज, शैब्या को इतना कष्ट उठाते देख बहुत दुखी हो रहे थे, किन्तु मनही मन उसकी बड़ी प्रशंसा करते थे। महाराज को जल पिला कर शैब्या पुनः पूर्ववत् उनके निकट आ कर बैठ गयी। अभी तक कुमार रोहित की निद्रा भंग नहीं हुई थी, महारानी शैब्या महाराज का कर-कंज अपने हाथ में ले कर बोली,—"नाथ! सुनती थी कि पवित्र विश्वनाथपुरी में आ कर कोई दुःखी नहीं रहता है। आज हम लोग भी उसी पवित्र देवधाम में आ पहुँचे हैं, किन्तु तौ भी आप को प्रसन्न नहीं पाती हूँ।"

युवती शैब्या का कहना पूरा भी नहीं होने पाया था कि महाराज बोल उठे,—"प्यारी शैव्या! मैं तुमको देवीरूप में पा कर ही प्रसन्न हूँ। सच पूछो तो इतनी प्रसन्नता मुझको उस समय भी नहीं थी जब मैं अयोध्या का महाराज था। उस समय अनेक प्रकार की चिन्तायें लगी रहती थीं, अभी मैं उन सबों से बिलकुल मुक्त हो गया हूँ, साथही तुम्हारी जैसी पतिव्रता पत्नी की सेवा से रहा सहा कष्ट भी काफूर हो गया, अब अगर कुछ चिन्ता है तो यही कि किस समय विश्वामित्र जी की दक्षिणा चुका उनसे उऋण होऊँगा। आशुतोष दिगम्बर की कृपा हुई तो शिघ्र ही यह चिन्ता भी जागती रहेगी।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

म० शैब्या—महर्षि की दक्षिणा चुकाने के लिए स्वर्ण-मुद्रा मिलेगी कहाँ?

म० हरिश्चन्द्र—किसी के हाथ अपने को विक्रय करूँगा, इसके सिवाय और तो कोई युक्ति नहीं सूझती।

म० शैब्या—क्या बिकनाही निश्चय किया है? और कोई उपाय नहीं दिखाता?

म० हरिश्चन्द्र—मुझे तो कोई युक्ति नहीं दिखाती, यदि तुमको देख पड़ती हो तो बता सकती हो।

म० शैब्या—क्या कोई ऋण नहीं देगा! ऋण लेकर महर्षि की दक्षिणा चुका दी जाती; पीछे कमा कर ऋण चुका दिया जाता।

म० हरिश्चन्द्र—मुझको यहाँ जानता है कौन? फिर ऋण देगा किस चीज पर? खाली मनुष्य को कोई थोड़ेही ऋण देते हैं।

म० शैब्या—मुझ को ही बेच कर उऋण होने की चेष्टा कीजिये।

म० हरिश्चन्द्र—तुम को किस के हाथ बेचूँगा? यद्यपि तुमको खरीदने वाले अनेक नर-पिशाच तैयार भी हो जायंगे, किन्तु मैं ऐसा करके धर्म में धब्बा नहीं लगा सकता, धर्म-पालन करने के लिये ही तो ये यातनाएँ उठानी पड़ी हैं?

म० शैब्या—नाथ, सुनती थी कि यह काशी, स्वर्ग-सहेली है; यहाँ अनेकों देव-मन्दिर हैं, साधु देवताओं की खासी जमघट लगी ही रहती है; तो क्या कोई ऐसा धर्मात्मा यहाँ नहीं होगा जो मुझको देव-मंदिर में सेवा के लिये खरीदे? मैं मन्दिर को पखारूँगी तथा पूजा की वस्तुओं को चुन चान कर साफ स्वच्छ कर रखूँगी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

म० हरि०—नहीं शैव्या, मैं अपने पहले तुमको कभी बेच नहीं सकता । हाँ यदि हम दोनों को कोई महापुरुष साथही खरीद लेगा, तो भले ही ऐसा कर सकूँगा ।

राजदम्पति में इसी प्रकार बातें हो रही थीं कि अकस्मात अनेक देव-मन्दिरों में एक साथ नगाड़े घण्टे और शंखके तुमुल नाद होउठे, नागरिक भी "जय विश्वनाथ" की आवाजकरते सड़कों पर आने जाने लगे। वटवृक्ष पर पक्षीगण प्रभाती अलापने लगे, देखते ही देखते रविरश्मि सरिता की तरल तरङ्गों को रञ्जित करती हुई नाचने लगी; मोटे तगड़े शरीर पर लम्बी लम्बी जटायें बिखराये, हाथ में चिमटा कमण्डलु लिये संन्यासी समूह भी प्रातःकाल के नित्य कर्म में लगे दिखाने लगे। वरुणा के घाट पर यात्रियों की खासी भीड़ लग गयी। उसी समय जम्हाई लेते हुए कुमार रोहित भी उठ बैठा। महाराज हरिश्चन्द्र महारानी से सम्मति लेकर उन सबों को साथ लिये नगर की ओर अग्रसर हुए। पत्थर से बँधी हुई सड़कों पर जो बिलकुल भींगी हुई थी नंगे पाँव चलते रहने से महाराज के पाँव शिथिल हो गये थे, पाँव में अनेकों छाले पड़ गये; वही दशा महारानी शैव्या के पैर की भी थी, उन दोनों के पैर से रक्त भी बह रहा था, किन्तु तो भी किसी प्रकार आगे बढ़ते ही जा रहे थे। एक तो मार्ग-श्रम से दम्पति क्लान्त होही रहे थे, दूसरे क्षुधा से भी अधिक पीड़ित थे। रोहित क्षुधा तृष्णा से पीड़ित रहने पर भी माता पिता की अवस्था देख कुछ नहीं बोलताथा। वे लोग स्वयं ही अनुमान कर दुखी थे। करते क्या ? लाचारी थी।

उस दिन काशी के सब देव—मन्दिरों में जा जाकर देव-प्रतिमा का दर्शन करना ही उन सबों ने निश्चय किया था

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust

और वैसा ही किया भी । देव-मन्दिरों के प्रसाद से ही उस दिन तीनों व्यक्तियों का यथेष्ट भोजन हो गया । कारण, काशी नगरी में धर्मशाला की कमी नहीं है । धनी निर्धन सब तरह के यात्रियों के रहने का अच्छा प्रबन्धहै । इसलिये महाराज हरिश्चन्द्र को भी रहने के लिये कोई विशेष तरद्दुद नहीं करना पड़ा । यों तो वे हज़ारों बार वहाँ आये थे, किन्तु महाराज की हैसियत से, संसारसाम्राट् के सम्मान से, इसी लिये हजारों की भीड़ उनके आगे पीछे लगी ही रहती थी । पर इस बार की बात दूसरी ही थी, इस बार वे कंगालवेष में थे । इसलिये कोई उनसे बातें भी नहीं करता और न द्रव्यलोभी तीर्थ के ठेकेदार पण्डे पुजारी ही अपनी लोभ-पिपासा को पूरी करने की इच्छा करके उनको विनय सुनाने आये ।

इस बार किसी ने उनको पहचाना भी नहीं और न परिचय पाने की ही इच्छा करके कुछ पूछा । महाराज, पत्नी पुत्र के साथ रात को किसी धर्मशाले में योंही लेट कर रात काट लेते और दिन को अपने कार्य के लिये शहर में भ्रमण करते । जब कई दिनों तक इसी प्रकार चक्कर लगाने पर भी उनका कार्य नहीं हुआ तब वे बहुत घबड़ाये; ज्यों ज्यों समय निकट आता जाता त्यों त्यों विश्वामित्र जी को उग्र मूर्ति का स्मरण कर वे भयभीत होते जाते, उनको भय हो रहा था कि कहीं मुनि बिगड़ कर श्राप न दे बैठें ।

क्षत्रियों का धर्म विरुद्ध कार्य भिक्षावृत्ति समझ कर उस ओर भी महाराज का ध्यान नहीं जाता और कहीं कोई नौकरी भी ऐसी नहीं मिलती जिससे अवधि के अभ्यन्तर ही दक्षिणा की मुद्रा जमा करके उऋण हो सकें । बस इसी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चिन्ता से वे आधे हो रहे थे। वहाँ शैव्या की सेवा से और किसी प्रकार का कष्ट उनको नहीं होने पाता था, वह अपने हाथ से जल लाकर उनको स्नान कराती, धोती फींचती, पूजा की सब सामग्री स्वयं संचय करती, घर को साफ करती जब वे पूजा करके आते तब शैव्या पूजा करने जाती, प्रसाद लाकर स्वामी पुत्र को भोजन कराती, उच्छिष्ट आप ग्रहण करती। इन कार्यों से अवकाश पा स्वामी की पदसेवा करती तथा सुधासनी वाणी सुना महाराज की कष्टचिन्ता को दूर करती।

हरिश्चन्द्र शैव्या के कार्यों से आश्चर्य करते थे, जैसी आशा उन्होंने स्वप्न में भी नहीं की थी आज वैसी आंख के सामने देखते थे। "धन्य सती शैव्या! धन्य है तुम्हारे पतिप्रेम पर!!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चौदहवां परिच्छेद ।

शैव्या ने भक्तिपूर्वक शूलपाणि शंकर की सेवा की; पातिव्रत धर्म से इस भीषण विपत्ति के समय भी मुंह नहीं मोड़ा, पर उस समय तक उसका कोई अच्छा फल मिलता नहीं दिखाया, दक्षिणा चुकाने को कोई युक्ति नहीं काम आयी, न किसी ने उन सबों को नौकर ही रखा और न कहीं उधार ही धन मिला, यह देख महाराज अधिक अधीर हो गये, रह रहकर विश्वामित्र की क्रोधमयी मूर्ति उनकी आंख के सामने नाच जाती सी प्रतीत होती, इस से वे अत्यन्त भयभीत हो रहे थे। स्वामी की यह अवस्था देख शैव्या बहुत घबड़ा रही थी, यों तो राजपाट छुट जाने से ही उसको अधिक कष्ट हुआ करता था, किन्तु वह उसकी कुछ परवाह नहीं करती थी। सिर्फ स्वामी की सेवा से उनके प्रसन्न मुख को देख कर ही प्रसन्न रहा करती थी, किन्तु स्वामी की वह प्रसन्नता भी लोप होते देख वह अधिक घबड़ायी। महाराज हरिश्चन्द्र भी रानी की सेवा से ऐसे सन्तुष्ट हो रहे थे कि राजसी सुख का कभी स्मरण भी नहीं होता था किन्तु उस समय भी वे विश्वामित्र जी की दी हुई अवधि के दिन को गिन रहे थे। ज्यों ज्यों समय समीप आ रहा था त्यों त्यों उनकी चिन्ता बढ़ रही थी। एक दिन सो कर उठने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पर महाराज ने शैव्या से आश्चर्य के साथ घबड़ा कर कहा, "शैव्या ! आज ही अन्तिम दिन है, अब तक दक्षिणा चुकाने का द्रव्य नहीं मिल सका, अब आज ही विश्वामित्र की क्रोधाग्नि में सूर्यवंश की अन्तिम आहुति पड़ेगी। वंश-रक्षा की कोई युक्ति नहीं दिखाती। आशुतोष विश्वनाथ जी की सेवा में भी आज कई दिन व्यतीत हुए, किन्तु इन्होंने भी मेरी प्रार्थना पर कृपा नहीं की।"

पति के मुख से इस प्रकार की बातें सुन शैव्या का शरीर सिहर उठा। वह कुछ देर मौन रह बोली,-"यथार्थ ही ईश्वर हम लोगों पर विपक्ष है; यदि नहीं तो अकारणही यह दुख यातना झेलने पर भी सफलता क्यों नहीं मिलती ! खैर जो होना है वही होगा; अब हम सबों का अन्तिम समय निकट आया ही दिखाता है, जब इन देवताओं ने भी हम सबों की प्रार्थना का तिरस्कार किया तो अब उपाय ही क्या है ! चलें आज इनके ही चरणों पर चल कर आत्म-हत्या कर ली जाय।"

इतना कहने के बाद ही शैव्या रोहित को गोद में उठा कर आगे बढ़ने को ही थी कि महाराज ने उसे रोक कर कहा,--"प्यारी शैव्या, जरा ठहरो, इस प्रकार आत्म हत्या करने से भी छुटकारा नहीं है, ऋण बोझ से लद कर मरने पर भी उस ऋण से मुक्ति नहीं होती, ऐसा धर्मशास्त्र कहता है, तब व्यर्थ ही आत्महत्या करने से क्या लाभ होगा।"

पति की बातें सुन शैव्या ठहर कर बोली,-"तब नाथ ! क्या करना होगा ?"

म० हरि०--यदि आज शाम तक मुद्रा नहीं मिल सकी तो पुनः ऋषि के पैरों पड़ कुछ दिन की अवधि और माँगूंगा आशा है, भगवान प्रार्थना पर अवश्य ध्यान देंगे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शैव्या--मैं भी समझती हूँ कि उनकी कृपा अवश्य होगी; क्योंकि दीनानाथ हो कर इस प्रकार कान में तेल डाले कभी नहीं रहेंगे।" इतना कह पुनः स्वामी का हाथ पकड़ बोली,—"चलिये, अब यहाँ ठहरने की आवश्यकता नहीं; विश्वनाथ हीं की शरण में उपस्थित होकर ऋषि के श्राप से भस्मीभूत होना ठीक है। वे स्वयं देख लेंगे कि उन की शरण आये हुए को भी एक साधारण ऋषि किस प्रकार अपनी क्रोधाग्नि की आहुति बनाता है। हा ईश्वर! तुम्हारी सृष्टि की विचित्रता का भेद पाना असंभव है। जिस संसार में पाप की शांति नहीं, पुण्य का पुरस्कार नहीं उस संसार में जीवन यापन करना भी ठीक नहीं।" इत्यादि बातें बोलती हुई शैव्या पति के साथ मन्दिर की ओर बढ़ती जा रही थी, उस समय उसका मुख-मण्डल स्वर्गीय तेज से दमक रहा था, आंखें क्रोध से लाल हो गयी थीं। अनेको दर्शक उस रमणीरत्न की ओर टकटकी लगाये देख रहे थे, पर वह किसी की ओर आंख उठा कर भी नहीं देखती। रोहित भी माता की गोद में ही था; किन्तु बिलकुल चुप, कुछ नहीं बोलता था।

शैव्या पतिदेव के साथ विश्वनाथ जी के मन्दिर की ओर चली। उस समय मन्दिर में लोगों की बड़ी भीड़ थी। यथा समय शैव्या मन्दिर में पहुँची। भीड़ को चीरती हुई मन्दिर में प्रवेश कर गयी। महाराज और कुमार रोहित भी उसके साथ ही थे। बिश्वनाथ जी के निकट जा शैव्या प्रार्थना करने लगी बहुत देर तक हाथ जोड़कर प्रार्थना करने के बाद दूसरे मन्दिर की ओर गयी। काशी में न तो मन्दिरों की कमी है और न देवताओं की। अतः राज्यदम्पति एकेक करके अनेक मन्दिरों में जाजा प्रार्थना करते रहे। इस प्रकार अनेक मन्दिरों में प्रार्थना करने के बाद

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पवित्र चक्रस्थान के पास ज्योंही वे आखड़े हुए थे कि पीछेसे विश्वामित्र जी को आता देख महाराज हरिश्चन्द्र चौंक उठे शरीर उनका शिथिल हो गया। जिसका भय था वही सामने आ उपस्थित हुआ, उन्होंने मन में कहा,—"महर्षि ने एक दिन का भी अवकाश नहीं दिया; न मालूम दक्षिणा नहीं पाकर क्या कहेंगे! हा ईश्वर! न मालूम मुझको क्या क्या विपत्ति झेलनी पड़ेगी।"

पति की अब शैव्या को बड़ी चिन्ता हुई, विश्वामित्र को आगे आया देख वह भी विकल हो गयी, पर कोई युक्ति न देख चुप रह गयी।

विश्वामित्र ने महाराज को सम्बोधन कर कहा,—"क्यों महाराज! अब क्या विलम्ब है? शीघ्र दक्षिणा चुकाइये, मैं आपके पीछे कितना दौड़ता रहूँगा, मुझको राजकार्य के अतिरिक्त योग जप, धर्म कर्म भी देखना है। या दक्षिणा के लिये ही आपके पीछे दौड़ा करना है?"

ऋषिश्रेष्ठ विश्वामित्र के इतना कहने पर भी हरिश्चन्द्र जी मौन ही रहे! कुछ नहीं बोले और बोलते ही क्या, कोई युक्ति भी तो अब तक नहीं दिखाती थी, उनको मौन देख पुनः विश्वामित्र ने कहा,—"मौन होने से कार्य नहीं होगा महाराज! साफ साफ बोलना ही पड़ेगा कि आप की क्या इच्छा है उस समय तो बड़े अभिमान से पृथ्वी दान करने चले थे इस समय दक्षिणा चुकाने में अभिमान को कहाँ रख छोड़ा उस समय तो बड़ी सफाई बताते थे, पर अभी मौन क्यों होगये शीघ्र दक्षिणा दीजिये, मैं अधिक समय नहीं ठहर सकता।"

इस पर महाराज बड़ी नम्रता पूर्वक बोले,—"नाथ! आप से क्या छिपा है? आप सब कुछ जानते हुए भी इस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विश्वामित्र बड़े गम्भीर गर्जन से बोले,—"इस प्रकार गिड़गिड़ाने से काम नहीं चलेगा, दक्षिणा देनेही को नहीं थी, तो इस प्रकार छल करने की क्या आवश्यकता थी।"

जगन्नाथ प्रेस राजघाट काशी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

क्यों बातें कर रहे हैं ! आप को मालूम होगा कि मैं अयोध्या छोड़ते समय मार्ग खर्च भी नहीं ले कर आया था। अनेक कष्टों से यहाँ आकर भी अभी तक कृतकार्य नहीं हो सका; ऐसी अवस्था में कहाँ से दक्षिणा चुकाऊँ ?"

इतना सुनते ही विश्वामित्र जी की क्रोधाग्नि भड़क उठी वे बड़े गम्भीर गर्जन से बोले,—"इस प्रकार गिड़ गिड़ाने से कार्य नहीं चलेगा, यदि दक्षिणा देने ही को नहीं थी, तो इस प्रकार छल करने की क्या आवश्यकता थी? अब भी साफ शब्दों में कह दो कि दक्षिणा नहीं दूँगा। मैं वापस जाता हूँ, देखी गई तुम्हारी सत्यनिष्ठता ! मालूम हुआ तुम्हारा धर्म ढकोसला।"

महाराज सर नीचा किये सब सहते रहे, उस समय उन्होंने समझा "सुखी संसार में वही है जो किसी का ऋणी नहीं है यदि वह भूखा भी रहता है तो उसको ऋणी महाराज से भी अच्छा समझता हूँ।" आज के पहले महाराज हरिश्चन्द्र ने किसी से ऐसी बातें नहीं सुनी थीं। यों तो स्वभाव ही से क्षत्री किसी की चुटीली चुटकी और व्यंगबाणो नहीं सुन और सह सकता है; पर बिचारे हरिश्चन्द्र करते क्या? धर्मपाश में बँधे थे, सर नीचा किये सब कुछ सहते रहे। अब तक शैव्या भी सब सुन सह रही थी, पर मनही मन कोई युक्ति सोच भी रही थी कि किस प्रकार पति को उऋण करूँ ? रोहित उस समय पिता माता की ओर ध्यान नहीं दे कर पास ही लड़कों के साथ खेल रहा था।

अपनी बातों का कुछ उत्तर न पा कर विश्वामित्र जी बोले,—"हरिश्चन्द्र, मैं समझता हूँ अब तुम दक्षिणा नहीं देना चाहते। आज अवधि पूरी होती थी; इस लिए मैं तुमको

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सूचित करने आया था। जब तुम दक्षिणा देना ही नहीं चाहते तो मैं भी तुम्हें छोड़ कर जाता हूँ; क्योंकि मैं कर ही क्या सकता हूँ! तुम्हारा वचन भंग हुआ, धर्म भ्रष्ट हुआ, सत्यनिष्ठता गयी अपने किये का फल पावोगे।" इतना कह विश्वामित्र जी लम्बी डेगें भरते आगे बढ़ने लगे। कुछ देर महाराज जड़वत् खड़ा रह सब सुनते रहे, किन्तु विश्वामित्र के चलने पर उनके धैर्य का बाँध टूट गया; वे बड़ी करुणा भरी दृष्टि से शैब्या की ओर देख कर बोले,— "शैब्या! महर्षि क्रोध कर चले जा रहे हैं। सर्वनाश होना चाहता है। हाय! क्या करूँ! कोई युक्ति नहीं दिखाती।"

पति की करुणा भरी बातें सुन शैब्या बड़ी दुःखी हुई, किसी प्रकार धैर्य धर कर विश्वामित्र की ओर अग्रसर हुई, शीघ्रता पूर्वक ऋषि के निकट जा पैर पर गिर पड़ी। विश्वामित्र शैब्या को पैर पर गिरी देख कुछ पीछे हट अलग हो बोले,— "पुत्री ऐसा क्यों कर रही हो? जो कुछ कहना है कहो।"

शैब्या हाथ जोड़ती हुई बोली,— "देव! आप से महाराज की अवस्था छिपी नहीं है; ऐसी अवस्था में क्षमा करें।"

विश्वामित्र—पुत्री, तुम चक्रवर्ती महाराज की धर्मपत्नी हो कर भी ना समझ की तरह बातें करती हो, भला इस दक्षिणा के कार्य में मैं क्या क्षमा करूँ? यह तो धर्म कार्य है इसे मेरे क्षमा करने से भी क्या हो सकता है? जब तक दक्षिणा नहीं चुकायी जायगी तब तक महाराज के सिर पर यह पाप सवार रहेगा और इसी पाप से उनका सर्वनाश भी हो जायगा। सब किये हुए पर पानी फिर जायेगा; मैं इसे क्षमा करने वाला कौन हूँ? उनको दक्षिणा नहीं देते देख मैं वापस तो जाही रहा था; फिर तुम मेरे पैरों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

क्यों पड़ती हो। तुमको भी इन बातों का ज्ञान है। न मालूम महाराज की बुद्धि इन दिनों क्यों ठिकाने नहीं है ! तुम उनकी धर्मपत्नी हो, यदि उनको इस पाप ताप से बचाना चाहती हो तो किसी उपाय से दक्षिणा चुकाने का ही यत्न करो, आज भर भी मैं ठहर सकता हूँ; अन्यथा नहीं; अभी भी कुछ समय है, पति की रक्षा के लिए पत्नी अपना तन मन धन सर्वस्व न्यौछावर कर सकती है। "

ऋषि की बातें सुन शैब्या बोली, – "खैर, सन्ध्या तक ठहरने का कष्ट स्वीकार करें; मैं चेष्टा कर देखती हूँ।"

विश्वामित्र---आज संध्या तक तो मैं अवश्य ठहरूँगा क्योंकि इतनी अवधि पहले ही दे चुका हूँ। जाओ, यत्न करो मैं ठहरता हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पन्द्रहवां परिच्छेद

सूर्य देव को अस्ताचल की ओर अग्रसर होते देख शैव्या ने कहा,—"नाथ, इतनी शीघ्रता से आगे क्यों बढ़ रहे हैं; वंशरक्षा का ध्यान रख कर कुछ भी तो विलम्ब करें !" ऐसा कहती हुई महाराज हरिश्चन्द्र के निकट आ बोली,—"महर्षि आज तक के लिए ठहरे हैं देखती हूँ, विना दक्षिणा चुकाये परित्राण नहीं है, चाहे जिस प्रकार हो दक्षिणा दे कर ही छुटकारा पाना होगा। अब आप इसके लिए चिन्ता न करें, मैं अपने को बेच कर दक्षिणा का द्रव्य ला देती हूँ। अभी मैं बाजार की ओर दास दासी खरीदने वाले कई महापुरूषों को जाते देख चुकी हूँ। उसी बाजार में जा कर अपने को बेच कर आपको मुद्रा लाये देती हूँ। अब आज से यह दासी श्री चरण की सेवा से अलग हो जायगी। ईश्वर को यही करना था, क्या करूँ ! सब कुछ सहनाहीं पड़ेगा।"

महाराज हरिश्चन्द्र शैव्या की बातें सुनते ही हतज्ञान से हो गये, कुछ देर मौन रहने बाद लम्बी साँस छोड़ते हुए बोले,—"हा ईश्वर ! अयोध्या की महारानी को, संसार की साम्राज्ञी को, हरिश्चन्द्र की शैव्या को दासी बनाने को आप तैयार हुए, जो शैव्या हजारों दासी से सेवित थी, आज वही दूसरे की सेवा करने चली। शैव्या ! शैव्या! मेरी प्राण प्यारी शैव्या ! मैं तुमको ऐसा नहीं करने दूँगा। भलेही महर्षि की क्रोधाग्नि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से मैं भस्मीभूत हो जाऊँ, पर तुमको दासी नहीं होने दूँगा। इतना कष्ट होने पर भी मैं तुमको देख देख कर जीवित रहा अब तुम्हारे बिना किस प्रकार जीवन धारण कर सकूँगा। इस लिए ऐसा मत करो।"

शैव्या – नाथ, जिस धर्म की रक्षा के लिये सत्यपालन के कारण आप ने पुत्र तुल्य प्यारी प्रजाओं को त्यागा, स्वर्ग समान जन्मभूमि को छोड़ा, देश, कोष, राज परिवार सबको तिलाञ्जलि दी। आज स्त्री के मोह में पड़ कर उस धर्म पर कुठाराघात करना ठीक नहीं है। इस नश्वर शरीर पर इतना मोह करना ठीक नहीं, यद्यपि इस समय मैं आप की सेवा से वंचित रहूँगी सही, किन्तु मेरा हृदय आप से दूर नहीं रहेगा, अपने हृदय-मन्दिर में आप की पवित्र मूर्ति की स्थापना हो चुकी है। जन्म जन्मान्तर में भी उसी पवित्र मूर्ति की पूजा होती रहेगी, आपको यह जीवनदासी दूसरे जन्म में भी इसी पवित्र चरणकंजकी सेवा करेगी। इस समय आप से यही प्रार्थना है कि इस अभागिनी को अपने कर्तव्य से वञ्चित नहीं होने दीजिये, पत्नी का कर्तव्य है कि तन मन धन को पति के कार्य में लगा दे।"

म० हरिश्चन्द्र--शैव्या! तुम देवी हो, मैं तुम्हारी बातों से ही स्वर्गसुख पा रहा हूँ, किन्तु अब तुम सुधासम वाणी सुनानेसे वञ्चित करना चाहती हो। धर्म—रक्षा के लिए मुझको न मालूम क्या क्या नहीं करना पड़ेगा। हा ईश्वर!

शैव्या---आप अधीर न हों, ईश्वर जो कुछ दिखाता है सब कुछ देखना ही पड़ता है।

म० हरिश्चन्द्र---प्यारी! मेरा कहना मानो, तुम ऐसा मत करो, मैं ही जा कर किसी के हाथ बिकता हूँ, तुम रोहित के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पालन-पोषण में रहो।

शैव्या–नाथ ! जरा बिचार कर देखें, मेरा शरीर किसका है। मैं ही किसकी हूँ। तब आप बिक जायं और मैं दर दर भटकती रहूँ ! यह ठीक नहीं, मैं आपकी सहायता तथा सेवा के लिए ही आप की जीवन संगिनी हुई हूँ। इस हेतु ऐसे अवसर में मुझे अपने कर्तव्य से बंचित रख नरक गामिनी न होने दें आपने तो धर्मरक्षा के लिये अपने सब सुख की तिलाञ्जलि दी और मुझ को उस धर्म के पालन से क्यों विमुख करते हैं !

इस बार हरिश्चन्द्र मौन होगये। उनसे शैव्या के प्रश्नों का उत्तर नहीं होसका। पतिदेव को मौन देख शैव्या बाजार की ओर अग्रसर हुई। महाराज ने उसको पुनः रोकना चाहा, किन्तु इस बार वह नहीं रुकी। निकट ही बाजार था, वहाँ अनेक प्रकार की चीजें बिक रही थीं। साथ ही कई दास दासियां भी बिकने को आयीं थीं, शैव्या कुछ देर बहाँ खड़ी रही। बाद बोली;–"मैं अपने को सहस्र स्वर्णमुद्रा पर वेचना चाहती हूँ, यदि किसी महानुभाव को दासी की आवश्यकता हो तो मुझे खरीद लें।"

शैव्या जैसी रूपवती देवी को देखते ही बाजार में अनेकों की आंखें उस पर आ अड़ीं; किन्तु सहस्र स्वर्ण-मुद्रा पर उस दासी को खरीदने का किसी को साहस नहीं हुआ कुछ देर शैव्या इसी प्रकार पुकारती घूमती रही; लेकिन कोई उसको खरीदने नहीं आया, तब वह पुनः बड़ी घवड़ायी सूर्यास्त होने में शीघ्रता हो रही थी; यह देख कर वह विशेष व्याकुल हो रही थी। नाना प्रकार के कष्टोंका सामना करने से उसके कमलमुख मुर्झाये हुये दिखाते थे, शरीर में केवल अस्थिपंजर शेष रह गया था। शैव्या के कई बार पुकार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पुकार कर कहने पर अन्त में एक वृद्ध ब्राह्मण उसके निकट आकर बोला,—"पुत्री! मुझको एक दासी की आवश्यकता है किन्तु मेरे पास कुल पाँच सौ स्वर्णमुद्रा हैं, यदि तुम उतने पर अपने को बेचना चाहती हो तो मैं तुम्हें खरीद सकता हूँ," उस ब्राह्मण की बातें सुनते ही शैव्या के मृतशरीर में मानों प्राण लौट आया, जलती हुई कृषी में जल वृष्टि हो गई, मरी हुई देह पर अमृत छिड़काने का कार्य उस ब्राह्मण की वाणी कर गयी। शैव्या बोली,—"यद्यपि इससे मेरा पूरा पूरा कार्य नहीं चल सकेगा, किन्तु तौ भी मैं आप के हाथ बिकने को तैय्यार हूँ, किन्तु उसके साथही एक शर्त और है; वह यह कि उच्छिष्ट भाजन और परपुरुष—सम्भाषण ये दो कार्य मुझसे नहीं हो सकेगा, और घर के जितने कार्य होंगे सब मैं करूँगी।"

ब्राह्मण—जो कार्य तुम करना चाहती हो वही करना; मेरी पूजाकी सामग्री तैयार कर ब्राह्मणी को घर कार्य में सहायता पहुँचाना ही तुम्हारा नित्य का कार्य होगा।

शैव्या-तब जल्दी कीजिये, स्वर्ण लाइये, मैं अपने पति के हाथ सौंप आऊँ।

ब्राह्मण ने पांच सौ स्वर्णमुद्रा शैव्या को दे दी, शैव्या दस मिनट का अवकाश लेकर मुद्रा पहुँचानें महाराज हरिश्चन्द्र के निकट गयी, महाराज भी दूर नहीं निकट में ही थे उनके निकट आकर शैव्या बोली,—"नाथ, इस अभागिनी से आपकी पूरी सेवा नहीं हो सकी; तबभी जो कुछ हुई है उसको अभी स्वीकारें, मैं अपने को एक ब्राह्मण देवता के हाथ पाँच सौ स्वर्ण-मुद्रा पर बेच आयी हूँ, आप इन्हें लेकर महर्षि के हाथ सौंपें, कुछ समय के लिये तो उन्हें शान्ति होगी।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पतिव्रता शैव्याकी बातें सुनतेही महाराजकी आँखासे आँसू की धारा प्रवाहित होने लगी, लम्बी साँस छोड़ते हुए बोले,– "हा! हरिश्चन्द्र! तुमको यह सब भी देखना बदा था, प्यारी शैव्या! तुम धन्य हो, पति के लिये ही तुमने ऐसा कार्य किया, किन्तु तुम्हारा पति कैसा अधम है कि पाणिग्रहण करके तुम्हारा प्रतिपालन नहीं कर सका।"

इतना कहने के बाद ही वे थर्रा कर बैठ, गये, आँख के सामने अन्धकार छा गया, पति की यह अवस्था देख शैव्या ने प्रबोध भरी बातों द्वारा कहा,– "नाथ, यह समय चिन्ता करने का नहीं है, महर्षि को मुद्रा दे आवें देखिये, वे भी वहीं टहल लगा रहे हैं। संध्या होने में भी अब विशेष विलम्ब नहीं है और अब इस दासी को आज्ञा दें कि ब्राह्मण के घर सेवा कार्य सम्भालने चले," इतना कहते कहते उसकी आंखों से आँसू की झड़ी लग गयी, स्वर्ण-मुद्रा पति के हाथ सौंप रोहित को गोद में उठा उसका मुख चूम कर बोली,– "बेटा, आज से इस अभागिनी माता का नाम भूल जाओ अब तुम्हारे लिये महाराज ही पिता माता सब कुछ हैं। उन्हीं की गोद में रहना।"

माता की इस प्रकार की बातें सुन रोहित भी रोता हुआ माता की गोद में लिपट गया। शैव्या रोहित को पति के आगे कर आप महाराज की चरण-धूलि सिर में रख ब्राह्मण के साथ उनके घर की ओर चली, चलते समय उसने अश्रुपूर्ण नेत्रों से महाराज की ओर देख पुनः रोहित की ओर दृष्टिपात किया, उसकी वह दृष्टि अपूर्व प्रेम तथा करुणासे भरी हुई थी। रोहित माता को ब्राह्मण देवता के साथ जाते देख रोता हुआ माता की ओर दौड़ा, पुत्र को रोता आता देख शैव्या ठहर गयी। ज्योंही रोहित माता के निकट आया त्योंही वह उसे अपनी गोद में उठा मुख चूम कर बोली,– "वत्स! अब इस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अभागिनी माता के पीछे क्यों दौड़े आते हो ? मैं तो ब्राह्मण देवता के हाथ बिक चुकी, अब महाराज के निकट ही रहो।"

इतना कह पुनः महाराज के हाथ रोहित को सौंप वह फिर आगे चली, किन्तु फिर भी वह माता के पीछे दौड़ता हुआ आकर उसका अञ्चल पकड़ रोने लगा। शैव्या पुनः ठहर गयी, यह देख ब्राह्मण देवता झुंझला कर बोले,—"क्या इसी प्रकार मेरे घर का कार्य सम्हालेगी ? यदि प्रेम पुत्र को दिखाना है तो मेरी स्वर्ण-मुद्रा लौटा दो, मैं दूसरी दासी खोज लूँगा।"

ब्राह्मण की बात सुन शैव्या भय खाकर बोली,—"देवता, क्षमा करें, लड़का अबोध है, जरा एक बार पुनः इसको पिता के निकट रख आने दें, तब मैं अवश्य चली चलूँगी।"

इस प्रकार ब्राह्मण को कह सुनकर वह पुनः रोहित को लेकर महाराज को सौंपने गयी, किन्तु फिर भी कुमार की वही हालत, माता का अञ्चल पकड़ रोता हुआ कहने लगा,—"मैं तुम्हारे ही साथ चलूँगा, मुझको यहाँ मत छोड़ो।" पुत्र का यह रोना सुन दम्पति का हृदय शोक से फटा जा रहा था, पाठक ! स्वयं अनुमान कर सकेंगे कि उस समय का दृश्य कैसा करुणाजनक होगा। जिसका एक मात्र पुत्र इस प्रकार माता का अञ्चल पकड़ कर रोता हो उस समय उस के पिता माता कैसी अवस्था में होंगे, इसे भुक्तभोगी ही जान सकते हैं।"

उन सबों को इस प्रकार रोते बिलपते देख ब्राह्मण पुनः बोले,—"अगर चलना है तो जल्दी करो, अन्यथा स्वर्णमुद्रा वापस करो।"

ब्राह्मण के वचन से भयभीत हो शैव्या उनके पीछे चली। लेकिन फिर भी वही हालत, कुमार उसके पीछे दौड़ा आ रहा है, इस बार शैव्याने ब्राह्मण देवता से दीनता पूर्वक निवेदन किया:—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"देवता; यदि आज्ञा हो तो बालक को भी अपने साथ लेती चलूँ। देखती हूँ' छोड़ जाने से इस की प्राणरक्षा नहीं हो सकेगी; अधीर हो विलपता हुआ प्राण गवाँ देगा।"

ब्राह्मण—इन सब बखेड़ाओं को रहने दो, फिर इसको भोजनादिक कौन देगा?

शैब्या—भोजन के लिए आप को कष्ट नहीं दूँगी, मुझको जो कुछ भोजन के लिए मिलेगा उसी में से मैं बालक को भी भोजन दूँगी।

ब्राह्मण देवता कुछ देर सिर खुजलाने के बाद बोले,—"ख़ैर, लेती चलो।"

शैब्या कुमार रोहित को गोद में ले ब्राह्मण को धन्यवाद देती हुई उनकी अनुगामिनी हुई। घर पहुँचने पर ब्राह्मण देवता ने अपनी ब्राह्मणी को बुलाकर कहा,—"आज तुम्हारे कार्य में सहायता पहुँचाने के लिये यह दासी खरीद लाया हूँ, अब तुम इसको घर का सब कार्य समझा कर सौंपदो।"

ब्राह्मणी शैब्या के रूप को देखकर चकित होगयी, उसने मन में कहा,—"ऐसी सुन्दरी दासी?" पीछे शैब्या को घरका सब कार्य बता दिया, ब्राह्मण की पूजा का पात्र साफ करना होम के लिये लकड़ियाँ चुन चुन कर तोड़ रखना, चौका लगाना इन कार्यों से अवकाश पाने पर ब्राह्मणी को घर कार्य्य में सहायता पहुँचाना-यही शैब्या का दैनिक कार्य्य ठहराया गया और रोहित को पूजा के लिये पुष्प तोड़ लाने का कार्य्य सौंपा गया।

उस वृद्ध ब्राह्मण को एक वृद्ध पत्नी और गंगाधर नाम का एकही पुत्र था, जो किसी पाठशाला में संस्कृत पढ़ता था। बस यही तीन व्यक्ति उनके घरमें थे। गंगाधर जब पाठशालासे पढ़ कर आया तो शैब्या पर उसकी दृष्टि पड़ी, उसको देखते ही

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उसका मनमोर नाचने लगा, शैव्या के सौन्दर्यदीपक के लिये उस पतंग गंगाधर के पंख फड़ फड़ाने लगे । वह शीघ्रता पूर्वक माता के निकट जाकर बोला,--"माता ! यह सौंदर्यमूर्ति रमणी कौन है ?"

ब्राह्मणी—वत्स, तुम्हारे पिता जी इसको खरीद कर लाये हैं, अब यह इस घर की दासी है ।"

माता के मुख से इतनी बातें सुनते ही गंगाधर का हृदय हर्ष से उछल पड़ा, अपनी पुस्तकादिकों को यथा स्थान में रख वह भोजन करने चला गया ।

शैव्या को ब्राह्मण के हाथ बिकजाने परमहाराज हरिश्चन्द्र बहुत दुःखी हुए; महर्षि विश्वामित्र की दक्षिणा का आधा उस समय चुका दिया गया और आधे के लिये सूर्यास्त तक चुका देने की प्रतिज्ञा करके अपने वे स्वयं बिकने के उद्योग में लगे । ज्यों ज्यों भगवान भास्कर अस्ताचल के निकट आते जा रहे थे त्यों त्यों हरिश्चन्द्र की विकलता बढ़ती जाती थी, धर्मरक्षा और सत्य के पालनार्थ ही वे इतना कष्ट उठा रहे थे । जब सूर्यास्त का समय हुआ, दिनमणि अस्ताचल की ओटमें आश्रय ग्रहण करने चले तब तक महाराज को किसी ने नहीं खरीदा था; वे " मैं अपने को पांच सौ स्वर्ण—मुद्रा पर बेचना चाहता हूँ, जिस किसी को दास खरीदना हो खरीद ले" की टेर लगा रहे थे । विश्वामित्र जी भी उनके पीछे ही पीछे घूम रहे थे, सूर्यास्त होने ही को था कि न मालूम किधर से एक चाण्डाल आ कर उनको खरीदने के लिये तैयार हुआ ।

धर्मरक्षा के लिये महाराज उसी चाण्डाल के हाथ बिक कर महर्षि विश्वामित्र से उऋण हुए । धन्य महाराज हरिश्चन्द्र ! तुम्हारी सत्य निष्ठता धन्य है !!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सोलहवां परिच्छेद

ब्राह्मण शैव्याको साथ लिये अपने घर आये, विविध प्रकारों के वृक्षों से घिरे हुए छोटे से उद्यान के बीच ब्राह्मण देवता का छोटा सा भव्य भवन था, घर सब छोटे थे, उन्हीं घरों में से एक छोटा सा घर शैव्या को रहने के लिये दिया गया, वह अपने प्राणप्रिय पुत्र रोहित के साथ उसी घर में रहने लगी।

हा! शैव्या!! आज़ गगनचुम्बी अट्टालिका को छोड़ तुम किस क्षुद्र घरमें आ बसी! क्या स्वप्नमें भी कभी तुम्हें ऐसी विपत्तियों का सामना करना पड़ा था? वह अपने बायें हाथ को कपोल पर रख अपने दुर्भाग्य को कोस रही थी, कभी अपनी ओर देखती और कभी रोहित की ओर देखती हुई धीरे धीरे बोलती,—"नहीं, मैं स्वप्न तो नहीं देखती हूँ। सब कुछ तो वही है, सिर्फ महाराज ही नहीं है, इसी लिये मेरे आगे अन्धकार सा मालूम होता है।" फिर एक दीर्घ निःश्वास छोड़ती हुई बोली-"हाय ईश्वर! न मालूम और क्या क्या देखने को बाकी है।"

रह रह कर उसको कभी अपनी बाल्यावस्था की, कभी महाराज हरिश्चन्द्र के प्रणयसूत्र के सूत्रपात होने के समय की, कभी अयोध्याके स्वर्गीय सुख की याद हो आती जिससे वह अत्यन्त दुःखी हो रही थी। जबसे शैव्या ब्राह्मण के घर आयी है तब से उसका शरीर सूखता चला जा रहा था, खाना पीना एक तरह से छोड़ चुकी थी, सिर्फ प्राणरक्षा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भर के लिये भोजन कर लेती थी। दिन भर ब्राह्मणके घर कार्य को बड़ी सावधानी के साथ पूरा करती और रात को पुत्र को गोद में ले अपने कमरे में चटाई पर लेट रोकर ही सुबह करती, उसका रोना और किसी बात के लिये नहीं था, सिर्फ स्वामीके लिये रोती थी। रोते समय कभी कभी बोल भी उठती,--" हाय , न मालूम महाराज कैसे और कहाँ होंगे, मेरे आने पर न मालूम उनको और कितना असह्य कष्ट उठाना पड़ा होगा, न मालूम महर्षि की दक्षिणा पूरी हुई होगी या नहीं यदि नहीं तो महर्षि की श्रापाग्नि की लपटसे कैसे तपित हुए होंगे !! इसी प्रकार सारी रात चिन्ता कर करवटें बदलने में ही व्यतीत कर देती ।

ऊषा के उदय काल में ही उठ वह प्रातः कृत्यों से निवृत होकर ब्राह्मण के घर का कार्य करती, झाड़ू देती, बर्तन मांजती, चौका देती, ब्राह्मण देवता की पूजा की सामग्री प्रस्तुत रखती। कुमार रोहित फुलवाड़ी से पुष्प चुन कर लाता ब्राह्मणी शैव्या के सद्व्यवहार से समझ गयी थी कि यह कोई बड़े घर की गृहलक्ष्मी है। भाग्य के फेर से ही दासी हुई है; किन्तु इसका यह कार्य सर्वदा नहीं रहेगा। इसी विचार से वह शैव्या को बहुत प्यार भरी दृष्टि से देखती और उसके साथ बहुत अच्छा व्यवहार करती, उधर ब्राह्मण देवता भी उसके कार्य से बहुत सन्तुष्ट रहते, किन्तु ब्राह्मण कुमार गंगाधर किसी और ही फिकर में था। उसकी बुरी कामना सर्वदा बुरे मार्ग में उसे अग्रसर करने का अंकुश दे रही थी वह जब पाठशाला से पढ़कर आता तब शैव्या के निकट जा हँसता हुआ बातें करने लगता, किन्तु शैव्या उसके आगे खड़ी भी नहीं रहती, बातों का उत्तर देना तो दूर रहा, यद्यपि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उसके इस व्यवहार से गंगाधर असन्तुष्ट था, किन्तु क्रोध करने से कार्य होने में सन्देह समझ क्रोध के मारे युक्ति से काय साधना चाहता था।

गंगाधर पाठशालामें संस्कृत पढ़ता था सही, लेकिन बड़ाही मन्द बुद्धि का था, अध्यापकका दण्डप्रहार तर्जन गर्जन का नित्य अभ्यास किया करता था। पाठशाला में गंगाधर मूर्ख, मन्द बुद्धि इत्यादि उपाधियों से ही विभूषित हुआ करता था, किन्तु घर आने पर वह पिता माता के आगे अपने को बुद्धिनिधान पण्डित प्रवर समझता और उन सबों को भी समझाने की चेष्टा किया करता था। संस्कृतमिश्रित भाषा में हीं वह पिता माता से बातें करता, ब्राह्मण और ब्राह्मणी पुत्र को होनहार समझ अपने को बड़ा सौभाग्यवती समझते। गंगाधर भोजन के समय भी सन्धि समास को हल किया करता था, यह देख सरलहृदय ब्राह्मण देवता समझते,—"गंगाधर बड़ा परिश्रमी है।" इससे अधिक सुख उनको और किसी बातसे नहीं होता।

एक दिन भोजन करने के समय गंगाधरने माता से कहा,- "माता! अन्नं देहि मे किंचितं" पुत्र की यह बातें सुनते ही ब्राह्मणी आनन्दसागर में प्रवाहित हुई, बोली,—"शैव्या! वत्स के लिये शीघ्र पढने इत्यादि का प्रबन्ध करदो. विलम्ब होनेसे ठीक नहीं होगा!" गंगाधर शैव्या को देवपरी समझता था. कई बार उन परियों की प्रशंसा अपने अध्यापक से सुन चुका था।

शैव्या गंगाधर के पढ़ने के लिये आसन बिछाकर चलने को ही थी कि गंगाधर वहाँ पहुँच कर बोला,—"क्या तुम पढ़ना लिखना नहीं जानती हो?"

शैव्या बिना उत्तर दिये ही धीरे धीरे वहाँ से चल पड़ी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वह गंगाधर का रंग ढ़ंग, चाल ढ़ाल देखकर उसको ताड़ गयी और उससे सचेत रहने लगी।

गंगाधर शैब्या से उत्तर नहीं पाकर क्रुद्ध नहीं हुआ, वल्कि उसी दिन सन्ध्या समय व्यतीत होने पर जिस समय शैब्या रोहित को लिये अपने कमरे में जा रही थी उसी समय अपने कमरे के निकट ही अन्धकार में गंगाधर को उसने छिपा खड़ा देखा, उसको देखतेही शैब्या का शरीर काँप उठा, वह शीघ्रता पूर्वक रोहित के साथ कमरे में प्रवेश कर द्वार भीतर से बन्द कर सो रही, पर नींद उसे कहाँ आती? सारी रात रोती ही बीत गयी।

गंगाधर अपनी घात चूक जाते देख चुपचाप अपने घर को चला गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सत्रहवां परिच्छेद

धीरे धीरे दुःख कष्ट के साथ महारानी शैव्याने ब्राह्मण के घर में लगभग एक वर्ष के व्यतीत कर लिया। उसके कोमल शरीर की कान्ति बिल्कुल ही जाती रही, वही दशा उस हतभागे रोहित की भी हुई, अब कोई उसे राजकुमार नहीं कह सकता था, किन्तु सूक्ष्मदृष्टि वाले उसके शरीरको देखते ही सब समझ जाते थे। ईश्वर ने इस अवस्था तक पहुँचा कर भी शैव्या को स्थिर नहीं रहने दिया, सच है, विपत्ति अकेली नहीं आती, परीक्षा के समय परीक्षार्थियों की दीनता पर ध्यान नहीं दिया जाता है, योग्यता की जांच तभी होती है जब वह परीक्षा में साफ निकल जाय, सोना खरा तभी समझा जाता है जब आग की कड़ी आंच में द्विगुण कान्ति से दमक उठे। ईश्वर पतिव्रता शैव्या को उसी प्रकार की कड़ी आँच में रख जांच रहे हैं। राज पाटको छोड़ कर भी जिसने पति का साथ दिया, ब्राह्मण के घर दासी रहकर भी जिसने स्वामी को धर्म-ऋण से उऋण कराया। भला वैसी आदर्श पतिव्रता के आगे क्षुद्र गंगाधर की क्या दाल गलने पाती? कई बार उसने शैव्या से अनुनय विनय के साथ कहा,—"कि तुमको शास्त्र का उपदेश देना चाहता हूँ। पढ़ाना चाहता हूँ" जिसके उत्तर में शैव्या ने कहा कि यदि आपकी ऐसी ही कृपा है तो रोहित को पढ़ाइये, उसी को उपदेश दीजिये। अब मैं पढ़ लिख कर क्या करूंगी।"

उसके इस उत्तर से गंगाधर हताश हो गया, जब

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उसकी कोई युक्ति शैव्या के बझाने में कारगर नहीं हुई तब वह उस पर बहुत बिगड़ा; रोहित को डाँट डपट सुनाने लगा; मारने पीटने भी लगा। शैव्या उसके इस व्यवहार से अत्यन्त दुःखी रहने लगी। गंगाधर ने मातासे कहकर रोहित का खाना बन्द कर दिया, सिर्फ शैव्या के योग्य भोजन मिला करने लगा। यद्यपि ब्राह्मणी ऐसा करने को पसन्द नहीं करती थी, किन्तु अपने सुयोग्य पुत्रके अनुरोधका उल्लंघन करने की शक्ति उसमें नहीं थी। अब रोहित भी बिलकुल अबोध ही नहीं था, बहुत कुछ समझने लग गया था। उसके प्रति गंगाधर का जो नीच व्यवहार होता था उसको वह भली प्रकार समझ लेता था। अब वह अपने ऊपर बीते कष्टों का वर्णन अपनी माता से नहीं करता। कारण, वह समझता था कि माता इससे अधिक दुःखी होगी।

जो कुछ भोजन मिलता शैव्या पहले रोहित को भर पेट भोजन करा लेने का यत्न करती, यद्यपि रोहित से गंगाधर की यह करतूत भी छिपी नहीं थी, यदि बालक माता की अवस्था देख भोजन करने से बहाना करता तो माता उसे समझा बुझा कर भोजन कराती, जिस दिन से शैव्या के लिये भोजन कम कर दिया गया उस दिन वह अपने एक तरह से भूखी ही रहती, इससे वह अत्यन्त कमजोर हो गयी, रोहित ब्राह्मण देवता की पूजा के लिये वाटिका से फूल लाने जाया करता था. वहाँ से ही खोज ढूँढ़कर कुछ फल तोड़ कर खालेता और माता को आकर कहता,-"माता! मैं फल भरपेट खा कर आया हूँ; मुझे भूख नहीं है, मैं घर में कुछ नहीं खाऊँगा।"

शैव्या बालक की चतुरायी को समझ कर बोलती,-"बेटा! फल खाकर कैसे रहोगे, फल खाकर रहने से बहुत कमजोरी हो जायगी।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रोहित—मैंने बनमें फूल तोड़ने के समय फल तोड़ कर भर पेट खा लिया है, आज अन्न नहीं खाऊँगा, आज तुमही खा लो माता।

पुत्र की बातों से शैव्या की आँखे आंसू से भर आयीं। वह लम्बी सांस छोड़ती हुई बोली,—"हा ईश्वर! क्या अन्त समय अयोध्या के राजकुमार को, संसार के चक्रवर्ती महाराज हरिश्चन्द्र के एक मात्र युवराज रोहित को फल-मूल भोजन ही शेष रह गया!!" इसी प्रकार की बातें कहती हुई वह बरा बर रोती ही रहती थी, ब्राह्मणी उसको इस प्रकार दुःख प्रगट करते देख एकान्त में उससे सब बातें पूछा करती, किन्तु शैव्या अपनी बीती उस पर प्रगट करना ठीक नहीं समझती थी, क्योंकि उससे उसको कुछ लाभ उठाने की आशा दिखाती नहीं थी, अपने दुःख से औरों को दुःखी करना ठीक नहीं समझती, इसी प्रकार दुःख कष्ट के साथ शैव्या अपने समय को ब्राह्मण देवता के घर में व्यतीत करने लगी। शैव्या के लिये ही इतना दुःख शेष नहीं था, ईश्वर ने कुछ और भी कष्ट उसके लिये ठहरा रखा था, उसके अन्तिम दुःख का वर्णन बड़ाही हृदय विदारक है; लिखते लेखनी रुक जाती है।

रोहित ने माता के निकट फल खाने की जो बात कही थी वह बिलकुल निर्मूल थी, उसने झूठी बातें सिर्फ़ इस लिये बनाकर कही थीं कि माता भोजन करेगी। क्योंकि गंगाधर की कृपा से अब एकही मनुष्य के योग्य भोजन शैव्या को मिलता था, जो वह रोहित कोही भोजन कराकर आप भूखी रह जाती, इस लिये रोहित ने ऐसा बहाना किया, किन्तु ऐसे कितने दिन कार्य चल सकता। एक दिन भूखा रहने सेही दूसरे दिन बालक ऐसा शक्ति हीन हो गया कि चल फिर भी नहीं सका, किसी प्रकार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust

फूल तोड़ने के लिये बाटिका में जा एक वृक्ष के नीचे थर्राकर बैठ गया, किन्तु वहाँ भी उदर की ज्वाला सताने लगी; अन्त में विवश हो कर " हे ईश्वर ! कहाँ हो दीनानाथ, अब इस भीषण विपत्ति से मेरी रक्षा कीजिये।" इत्यादि कहता हुआ वह रोने लगा, उसने माता पिता और अध्यापक से सुना था कि विपत्ति पड़ने पर ईश्वर को पुकारने से वे अवश्य ही विपत्तियों को दूर करते हैं, ध्रुव प्रह्लाद प्रभृति की कथायें उसने माता के मुख से सुनी थीं, इससे उसको दृढ़ विश्वास हो गया था कि ईश्वर अवश्य ही मेरी सहायता करेंगे । इसी विश्वास से वह ईश्वर को बारम्बार पुकारने लगा,-"हे दीना नाथ, आप कहाँ हैं ? मेरी प्रार्थना पर ध्यान दें, जिस प्रकार आपने ध्रुव और प्रह्लाद के कष्टों को दूर कर उनकी रक्षा की उसी प्रकार शरणापन्न रोहित के कष्टों को भी दूर कीजिये, शीघ्र दौड़िये, रक्षा कीजियेः—

इधर कब होगी करुणा कोर,
ध्रुव को जा अपनाया तुमने,
निर्भय अचल बनाया तुमने,
प्रिय प्रह्लाद बचाया तुमने,
काट कष्ट की डोर ।
तुमको बहुत पुकारा हमने,
दया दिखायी जरा न तुमने,
कहो छिपे क्यों कैसे बन में,
निष्ठुर नन्द—किशोर ।

रोहित इस प्रकार विनय कर ही रहा था कि उसके आगे एक पका हुआ सुस्वादु फल वृक्ष से आ गिरा, फल देखते ही रोहित हर्ष से नाच उठा, उसने समझा कि ईश्वर ने मेरी प्रार्थ-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नापर प्रसन्न होकर यह फल मेरे लिये भेज दिया है; अतःशीघ्रता पूर्वक उसने उस सुपक्व फल को खा कर कुछ शांति पायी, फिर वृक्ष के नीचे बैठे बैठे ईश्वर को अनुनय विनय के साथ पुकारने लगा। सहसा उसकी दृष्टि उसी वृक्ष की ओर गयी जिसके नीचे वह बैठा था, देखता है,-उस वृक्ष में कुछ वैसेही फल और भी लगे हैं, जैसा उसके आगे गिरा था। बालक भूख से पीड़ित तो था ही। वृक्ष पर चढ़कर उन फलोंको तोड़ने की चेष्टा करने लगा। पहले तो उसने ढेले पत्थलों से उन फलों के तोड़ने का यत्न किया; किन्तु उस प्रकार सफलता नहीं मिली एक फल भी नहीं तोड़ सका, अन्त में विवश हो वृक्ष पर चढ़ने की चेष्टा करने लगा। सत्य है, इस जठराग्नि की ज्वाला शांत करने के लिये जीव क्या नहीं करता है। अव्वल तो वह राज कुमार वृक्षों पर चढ़ने उतरने का हाल उसको क्या मालूम! दूसरे कई दिन का भूखा वृक्ष को देखतेही काँप रहा था, किन्तु तौभी उससे न रहा गया, किसी न किसी प्रकार वृक्ष पर जा चढ़ा।

कुमार वृक्ष पर चढ़ तो गया, किन्तु फल नहीं पासका। एक फल के निकट जा कर ज्योंही हाथ बढ़ा उसको तोड़ने को ही था कि उसकी दृष्टि फल से सटे हुए एक काले सर्प पर पड़ी। सर्प फल से लिपटा बैठा था, रोहित को अपनी ओर हाथ बढ़ाते देख फुफकारता हुआ वह फन काढ़े नाभी के बल खड़ा हो गया। रोहित सर्पको देख हाथ हटाता हुआ बोला,—"सर्पराज, फल को छोड़ कर अलग हट जाओ; मैं ईश्वर के आज्ञानुसार ही फल लेने आया हूँ, तुम इस में बाधा क्यों डालते हो?"

उसके उत्तर में सर्प केवल फुफकार छोड़ताही रहा, हटा नहीं। यह देख रोहित क्रोधित होकर बोला,—"क्या तुम मेरा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कहना नहीं सुनोगे ? देखो मेरी माता भूखसे पीडिंत हैं, मैं भी भूखा हूँ, इसी फल को लेकर अपनी क्षुधा को शांत करूँगा अस्तु, तुम को निवेदन पूर्वक कहता हूँ कि फल को छोड़ कर अलग हट जाओ।"

रोहित की इस प्रार्थना पर भी सर्प पूर्ववत् फन फैलाताहुआ फुफकार सुनाता रहा। इस बार रोहित को बड़ा क्रोध हुआ, उसने उत्तेजित हो कर सर्प को धक्का दे कर गिराना चाहा, अबोध बालक को यह भी ज्ञान नहीं रहा कि हाथ से धक्का देने पर सर्प भी कहीं हटता है! अतः उसी समय उस विषैले सर्प ने रोहित पर चोट किया, ज्योंही रोहित सर्प से डसा गया त्योंही मूर्छित हो कर पृथ्वी पर आ गिरा।

हा! अभागिनी शैव्या! तुम इस समय कहाँ हो, तुम्हारा हृदयरत्न, दुःखावस्था का एक मात्र अवलम्ब, नेत्र-पुतली रोहित को कालसर्प ने काट खाया! इस समाचार को पाकर न मालूम तुम्हारी कैसी दशा होगी!

वह बाटिका ब्राह्मण के घर के निकट ही थी, यह समाचार शैव्या तक पहुँचने में अधिक विलम्ब भी नहीं हुआ।

समाचार पाते ही शैव्या कटे हुए वृक्ष की भांति पृथ्वी पर मूर्च्छित हो गिर गयी, अब इसके विषय में और लिखा नहीं जाता उस समय उसकी कैसी दशा हुई होगी! पाठक स्वयं अनुमान कर लेवें। पुत्र की मृत्यु पर माता को कितना दुःख होता है उसका ठीक ठीक वर्णन हो भी नहीं सकता। वह अगाध समुद्र की भांति अपरिमेय है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अठारहवां परिच्छेद।

अमावास्या की रजनी थी, घोर अन्धकार छाया हुआ था, संध्या के साथही अन्धकार ने प्रकृति को अपना ग्रास बना लिया था। यहां तक कि अपनी आँख से अपना हाथ पैर भी नहीं देख पड़ता था, सांसारिक जीव जन्तु अपने अपने निवासस्थान में सोये पड़े थे, प्रकृति भी निद्रादेवी की गोद में पड़ी सी प्रतीत होती थी। तमाम सन्नाटा ही सन्नाटा छाया हुआ था, हाँ कभी कभी उल्लू और चमगीदड़ों की कर्ण कटु बोली उस नीरवताकी शान्तिको भंग करती सुनी जाती थी, जहाँ तहाँ प्रहरियों की सचेत करने वाली आवाज भी सुनायी पड़ती थी। चारो ओर बड़ा ही भयानक दृश्य दिखाता था। ऐसे डरावने समय में मैं पाठकों का ध्यान काशी के महाश्मशान की ओर आकृष्ट करता हूँ। वहाँ का भयानक दृश्य वर्णनातीत था। काशी नगरी से कुछ दूर सुरसरी के किनारे सुविस्तृत निर्जन मैदान है, उसी मैदान में वह भयंकर श्मशान भूमि है, जिसमें रातोदिन अनेकों चितायें जलती बुझती और बढ़ती दिखायी पड़तीहै; कहीं शवों को गिद्ध कुत्ते सियार नोचते दिखाते हैं, कहीं मुर्दों की अस्थियों की ढेर दिखाती है, कितने जले अधजले मुर्दे और लकड़ियों को इधर उधर बिखरे देखते हैं। चारो ओर से कुत्ते, सियार और गृद्धों के कर्णकटु भीषणरवसे वह श्मशान-भूमि गूँजती रहती। दिन को भी वहाँ भय मालूम होता है और रात को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust

तो भय के भी प्राण सूख जाते हैं। उस अमावास्या की अँधियारी रात में बादलों के घोर गर्जन तर्जन हो रहे थे, जिस से वह भयानक श्मशान–भूमि और भी भयानक हो रही थी, गृद्ध, कुत्ते उसी प्रकार लड़ झगड़ रहे थे, कई चितायें जल बुझ रही थीं, उस प्रलयकाल में भी उस श्मशान में भयंकर जैसी भयावनी सूरत वाले कई चाण्डाल लम्बी लम्बी लाठी हाथ में लिये, श्मशानाधिपति प्रधान चाण्डाल की आज्ञा से वहाँ पहरा दिया करते थे, आधा कफन और निर्धारित कर चुकाये बिना वे किसी को मुर्दा नहीं जलाने देते थे। उन चाण्डालों का साथी एक चाण्डाल उनसे अलग ही था। यद्यपि उसका कार्य भी वही था जो उन चाण्डालों का था किन्तु उसका व्यवहार कुछ दूसरा था। उसके शरीर की कान्ति बड़ी ही कमनीय थी। खिले हुए कमल जैसे उसके नेत्र ललाट प्रशस्त और चौड़ा था। उन्नत वक्षस्थल, लम्बी लम्बी भुजायें उसके शरीर के सौंदर्य को बढ़ाती हुई उसकी विशेषता का परिचय दे रही थीं, किन्तु उसके मुखमण्डल मुर्झाये दिखाते थे; चित्त पर चिन्ता अपना चिरस्थायी अधिकार जमा चुकी थी। उस भयानक रात में वह चाण्डाल श्मशान के किनारे अपनी लाठी के बल खड़ा हो न मालूम क्या सोच रहा था, उसकी दृष्टि पास की एक जलती हुई चिता पर थी, अकस्मात् किसी के करुणक्रन्दन से वह चौंक उठा। यद्यपि रात बड़ी अंधियारी थी, गीदड़, कुत्ते चिल्ला रहे थे; किसी को कोई देख नहीं सकता था, किन्तु वह रोने की आवाज उसको साफ साफ सुनाई पड़ी; अतः वह उसी ओर धीरे धीरे अग्रसर हुआ जिस ओर से आवाज आ रही थी। ज्यों ज्यों वह उस ओर अग्रसर होता जाता था त्यों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

त्यों हृदय विदारक ध्वनि से उसका हृदय काँपता जाता था। रह रहकर शरीर शिथिल हो जाता था, पाँव आगे नहीं बढ़ते थे।

इस नश्वर शरीर को पाकर भी मनुष्य धन, बल और रूप का अहङ्कार करते हैं। अपने सामने संसार को तुच्छ समझते हैं। क्या उन्होंने कभी भूलकर भी इन बातों का विचार किया है? अगर नहीं तो मेरे साथ उस भयानक श्मशान-भूमि में चलकर उस रमणी का रोदन सुने, जो मृत पुत्र की लाश गोद में लेकर रो रही है। जिसकी रुलाहट से पत्थर भी टुकड़े हो रहे हैं, वहाँ पहुँचते ही उनका सब मोह अभिमान दूर हो जायगा, स्वार्थ-लोभ उन पर अपना जादू-टोना नहीं चला सकेगा।

पाठक! वह दुःखिनी रमणी एक दिन महारानी थी, उसका वह मृत पुत्र एक दिन राजकुमार था, आशा है, मेरी पाठिकागण उसको भूली नहीं होंगी, उस महारानी शैव्या के राजप्रासाद में स्वर्ण-प्रदीपों की ढेर जलती रहती थीं, किन्तु आज वही अकेली अन्धकारमयी श्मशान-भूमि में मृतपुत्र की लाश लिये रो रही है।

अब आज उस महारानी के साथ कोई भी वहाँ तक नहीं आया; जिसकी सेवा करने में अनेकों दास-दासियाँ अपना सौभाग्य समझती थीं; आज उसके पास पुत्र की अन्तेष्टि के लिये भी अर्थ नहीं रहा। उसने अनेक चेष्टा से किसी प्रकार रोहित की लाश को वहाँ तक तो पहुँचाया, किन्तु अब किस प्रकार उसकी अन्तेष्टि हो, इस की युक्ति उसे नहीं सूझती थी। उस समय उसके धैर्य-सागर का बाँध टूट गया, वह अधीरा, विह्वला हो फूट फूट कर रोने लगी। उस की रुलाहट को सुन कर ही वह चाण्डाल उसकी ओर अग्रसर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हुआ था। पाठक, महाराज हरिश्चद्र को भूले नहीं होंगे आप को भली भाँतिं मालूम है कि वे विश्वामित्र जी की शेष दक्षिणा चुकाने के लिये चाण्डाल के हाथ बिक गये थे। उस दिन से उनका भी वही कार्य था, श्मशान-भूमि में कफन और कर वसूल करने में ही वे व्यस्त रहा करते थे। अतः उस चाण्डाल के वेष में वे स्वयम् ही महाराज हरिश्चन्द्र थे।

धीरे धीरे शैव्या के निकट जाकर वे चुप चाप खड़े हो गये, अभी तक न तो उन्होंने शैव्या को देखा ही था और न कण्ठ-स्वर से ही पहचान सके।

शैव्या उन्मादिनी की भाँति उच्च स्वर से चिल्ला चिल्ला कर रो रही थी, उसकी इस रुलाहट को सुन कर श्मशान-वासी कुत्ते गीदड़ भी दूर खड़े हो चुप लगा गये। शैव्या बड़ी व्याकुलता के साथ रो रही थी, उसी समय हठात् बिजली चमक उठी। बिजली के उस चंचल प्रकाश में उसने देखा कि उससे कुछ आगे हट कर एक भयंकर वेशधारी पुरुष हाथ में लम्बी लाठी लिये खड़ा है। उस को देखते ही भय से शैव्या के शरीर के रोंगटे खड़े हो गये।

अंधियारी निशा में काले कम्बल से ढके हुए शरीर वाले व्यक्ति को आगे खड़ा देख शैव्या अनुमान करने लगी,-"क्या 'यमराज' तो नहीं हैं? मालूम होता है वेही मेरे रोहित को लेने आये हैं" इसी भय से उसने रोहित की लाश को अपने हृदय से चिपका कर कहा,-"आप कौन हैं? क्या यमराज तो नहीं हैं। मेरे प्राण प्यारे रोहित को लेने आये हैं? यदि ऐसा ही है तो आप रोहित के बदले मुझको ले चलें, क्योंकि उसके बिना मैं अब जीवित नहीं रह सकती। साथही एक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

व्यक्ति और हैं जो इस समाचार के सुनते ही निष्प्राण हो जायँगे ।"

इसी प्रकार शैव्या घण्टों तक उस दण्डधारी व्यक्ति की ओर मुख किये कातर स्वर में बोलती रही । वह दण्डधारी व्यक्ति भी उसके आगे खड़ा खड़ा सब सुनता रहा, अन्धकार के कारण निकट रहने पर भी वे एक दूसरे को देख नहीं सकते थे। उस समय शैव्या के विलाप से आकाशमण्डल भी रोता दिखाने लगा, अश्रुधारा की भाँति बादल बूंद टपकाने लगा, दण्डधारी व्यक्ति भी दुःखिनी के दुःख पर आँसू बहा रहा था। पर रातो दिन श्मशान में रहने के कारण उसके हृदय में उतनी घबड़ाहट नहीं हुई । नित्य प्रति अनेकों चिताओं को जलती देख उसने समझ रखा था कि यह संसार जीवों की नाट्यशाला की रंगभूमि है, जीव मात्र यहाँ आ आ कर अपना अपना अभिनय दिखा जाया करते हैं। इस संसार का यही नियम है, आने के साथही जाना लगा रहता है।

अस्तु, एक लम्बी सांस छोड़ता हुआ उस व्यक्ति ने शैव्या के प्रश्न का उत्तर दिया,--"हतभागिनी, मैं यमराज नहीं हूँ, मैं भी तुम्हारा ही जैसा हतभागा हूँ । मनुष्य मात्र ही हतभागा कहा जा सकता है, एक दिन सब की यही गति होती है । मैं नित्य अपनी आँखों तुम्हारे जैसे अनेकों हतभागे हतभागिनियों को आती देखता हूँ। इस श्मशानभूमि में रह कर मुझ को यही शिक्षा मिली है कि संसार नश्वर है, जिस प्रकार उदय के बाद अस्त हुआ करता है उसी प्रकार जन्म के बाद मरण, सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख होता रहता है। नित्य श्मशान का दृश्य देखते देखते मेरा हृदय कठोर गया हो है। अस्तु, तुम इस मृतपुत्र को लेकर व्यर्थ ही रो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रही हो। अब रोने से कुछ फल नहीं मिकलेगा, मरा पुत्र उठ नहीं बैठेगा। अस्तु, उठो, संस्कार कार्य में लगो। देखो, वृष्टि आरम्भ हुई ! कहीं अधिक पानी पड़ना आरम्भ हुआ तो बड़ी कठिनता होगी। अब विलम्ब मत करो।"

उस अपरिचित व्यक्ति के मुख से करुणा भरी बातें सुन कर शैव्या विस्मित होकर मन ही मन कहने लगी,---"यह व्यक्ति कौन है? कोई हो, पर उसको भी हृदय है। अगर नहीं तो इस प्रकार मधुर स्वर में उपदेश भरी बातें क्यों कहता ! यदि मेरे दुःख पर उसको दया नहीं होती तो "हाय" क्यों मारता ? सहृदय नहीं होता, तो मेरी जैसी अभागिनी की बातें धीर भाव से खड़ा खड़ा क्यों सुनता ?" इस प्रकार मनमें विचारती हुई उस व्यक्ति की ओर वह पुनः देखने लगी, लेकिन अन्धकार के काले पर्दे के कारण वह उसको नहीं देख सकी।

शैव्या पुनः उस व्यक्ति को सम्बोधन कर बोली,--"आप कौन हैं ? मैं आपके शरीर को देख कर जैसा भयंकर समझती थी, आपके मधुर स्वर से प्रतीत होता है आप वैसे भयंकर नहीं हैं। क्या सच में आप भी मेरे ही जैसे अभागे हैं ? या कोई देवता हैं ? इस प्रकार के छद्म वेश से क्या मेरा दुःख दूर करने आये हैं ?"

"यदि नहीं तो यहाँ आने की क्या आवश्यकता है ? क्या पुनः मुझको छलने आये हैं ? अब छल छोड़दें, आप से तो कुछ छिपा नहीं है, फिर इस अभागिनी के प्रति इतनी निष्ठुरता की आवश्यकता क्या ? हे देव ! यदि आप इस दुःखिनी की प्रार्थना सुन कर ही यहाँ आये हैं तो इस दुःखिनी की प्रार्थना पूर्ण कीजिये। आज मेरा सर्वस्व जा रहा है, रक्षा कीजिए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कृपा कर मेरे पुत्र को जीवित कर दीजिये, मैं आप के पैरों पड़ती हूँ।"

शैव्या इसी प्रकार प्रार्थना करती हुई पुनः रोने लगी, दण्ड धारी व्यक्ति ने पुनः उसकी अवस्था पर लम्बी साँस छोड़ी, कुछ देर मौन रह बोला,--"भद्रे, क्यों मेरी बातों पर अविश्वास कर रही हो? मैं सत्य कहता हूँ कि मैं देवता नहीं हूँ। चाण्डाल भी नहीं चाण्डाल का अधम सेवक हूँ। इस श्मशान में रातो दिन मुर्दे जलाने वाले से कफन और कर वसूल करने के लिये ही मैं अपने स्वामी से नियत किया गया हूँ। कफन-कर वसूल कर मुर्दा जलाने देना मेरा कार्य है, तुम भी उचित "कर" चुका कर पुत्र का दाह संस्कार करो, क्यों व्यर्थ विलम्ब कर रही हो? आशा है, मेरी बात पर विश्वास करके दाह करने के पहिले पांच पैसे कर रूपमें शीघ्र चुका दोगी। मैं संस्कार के लिए अग्नि आदि का प्रबन्ध करता हूँ; तुमको इसके लिये तरद्दुद नहीं करना पड़ेगा बस मुझसे इतनी ही सहायता हो सकेगी।"

उस व्यक्ति की इस बात से शैव्या और भी विह्वला हो रोने लगी। उसके पास तो एक छदाम भी नहीं था, वह कर चुकाती कहाँ से? शैव्या को चारों ओर अन्धकार मालूम होने लगा। किस प्रकार विचारी पुत्र का दाह कर्म करती? वह रो रही थी और साथ ही यह भी कह रही थी, हा ईश्वर! अयोध्या की महारानी आज पांच पैसे के लिये इस प्रकार विलप रही है? कफन कर चुकाये बिना उसके प्रिय पुत्र की अंतेष्टी कैसे होगी? उसके पास तो एक कौड़ी भी शेष नहीं रही। हाय ईश्वर! आप का रहस्य कुछ जाना नहीं जाता न मालूम महाराज अभी कहाँ और किस अवस्था में होंगे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जब उनको इस भीषण दुर्घटना का पता मिलेगा तब न जाने उनकी कैसी अवस्था होगी !"

इसी प्रकार कलपती विलपती शैव्या रो रही थी उसकी रुलाहट से दण्डधारी व्यक्ति का धैर्य-तन्तु टूट रहा था; अंत में उसने पुनः शैव्या से पूछा,-"तुम क्या यथार्थ में अनाथिनी हो ? भाव से तो मालूम पड़ता है कि तुम सधवा हो, तब तुम्हारा पति इतना निष्ठुर क्यों है ?"

उसकी इस बात से शैव्या को मालूम हुआ कि कोई तीक्ष्ण बाण उसके वक्षस्थल में चुभा रहा है। पति को निष्ठुर बतलाने वाले चाण्डाल-सेवक से वह बोली,--"आप बिना समझे ऐसी बात क्यों कहते हैं? जिन्होंने जीवन पर्यन्त पुत्र से भी अधिक स्नेह से प्रजा का पालन किया, जिन्होंने इस अभागिनी को छोड़ और किसी को अपने प्रेम-सूत्र में आवद्ध नहीं किया। यह मृतपुत्र एक दिन जिनका हृदय मणि, नेत्र की तारा और कण्ठका हार था, उनको आप निष्ठुर कहते हैं ! चाण्डाल-सेवक ! यह आपने अच्छा नहीं कहा। क्यों इस समय पतिनिन्दा कर के इस हतभागिनी के जले घाव पर नमक छिड़क रहे हैं ? मैं तो योंही विपत्ति की सतायी बिलप रही हूँ, कृपया इस समय मुझको दुःख पहुँचाने की चेष्टा न करें।"

चाण्डाल-सेवक आश्चर्यित हो कर आप ही आप (स्वगतमें) बोला,-"यह क्या ! यह अनाथिनी कौन है? क्या इसका स्वामी कहीं का महाराज था, जो इसको छोड़ चुका है ? इस संसार में स्त्री पुत्र त्यागी महाराज हरीश्चन्द्र के सिवाय दूसरा और कौनहै ?" इतना कह वह शीघ्रता पूर्वक शैव्या के बिलकुल निकट जा कर उसके मुखमण्डल की ओर आँख फाड़ देखने लगा,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

किन्तु घोर अन्धकार आच्छादित रहने से उस समय उसे शैव्या का मुख-मण्डल नहीं देख पड़ा। तब वह चाण्डालसेवक गम्भीर गर्जन के साथ कहने लगा,-"शीघ्र बताओ, तुम कौन हो? क्या तुम्हारा स्वामी, स्त्री पुत्रत्यागी है? देवि, शीघ्र बताओ, क्या तुम हतभागे हरिश्चंद्र की धर्मपत्नी महारानी शैव्या हो? क्या तुम अयोध्या की महारानी, पति की धर्म रक्षा के लिये ब्राह्मण के हाथ पाँच सौ स्वर्ण-मुद्रा में बिकी हुई शैव्या हो? बोलो, बोलो, तुम्हारी ही एक बात पर इस अधम चाण्डाल का सर्वस्व निर्भर है। क्या यह हतभागा तुम्हारा पुत्र रोहितास्व तो नहीं है?"

उस व्यक्ति के मुख से इस प्रकार की बातें सुन शैव्या शीघ्रता पूर्वक उठ खड़ी हुई और उसी व्यक्ति की ओर आंख निकाल देखने लगी। उस समय उसके मुख से और कोई शब्द नहीं निकला। वह एकदम टकटकी लगाये खड़ी रही, उसके शरीर के भीतर बिद्युत संचार सा प्रतीत होता था, घंटों तक वह अवाक् हो उसी प्रकार खड़ी रही।

सहसा आकाश में पुनः बिद्युत् चमक उठी। उस समय उन दोनों में से किसी को भी कुछ नहीं कहना पड़ा, बिद्युत ही दोनों के बीच परिचय कर गया। चाण्डाल सेवक महाराज हरिश्चन्द्र की दृष्टि मृत रोहित के मुख पर पड़ी, शैव्या के क्षीण मुख-मण्डल भी देख पड़े। देखते ही महाराज का शरीर सिहर उठा। भयंकर दण्डधारी श्मशान रक्षक हरिश्चन्द्र "प्यारी शैव्या, क्या मेरे प्राणाधार पुत्र रोहित का अंत में यही परिणाम हुआ" कहते शैव्या के शरीर से जा लिपटे। शैव्या भी धैर्य के बाँध को तोड़ती हुई उनके पैर से लिपट शोक-समुद्र में प्रवाहित होने लगी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कुछ देर तक दम्पति विह्वलता की सीमा लाँघते हुये रोते ही रहे, किसी ने एक दूसरे से कोई बात नहीं की इस प्रकार रो पीट कर उन सबों ने वहाँ और कुछ समय बिताया। मेघखण्ड तर्जन-गर्जन के साथ इधर उधर आकाश-मण्डल में चक्कर लगा रहे थे। चपला रह रह कर चमक रही थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उन्नीसवां परिच्छेद

राजदम्पति मृतपुत्र रोहित को गोद में ले कुछ समय तक ज्ञान रहित हो गये। पश्चात् चैतन्यता प्राप्त करने पर महाराज हरिश्चन्द्र ने शैव्या को भी चेतनावस्था में ला कर कहा,-"प्यारी तारा, अब धैर्य धारण करो। ईश्वर जोजो दुःख मत्थे लादें उसे सहर्ष संभालने की चेष्टा करो। यद्यपि हम लोगों का आशा-प्रदीप निर्वाण हो गया है, तौ भी इस प्रकार रोने पीटने से कार्य नहीं चलेगा। हम लोगों पर अभी हम लोगों का अधिकार नहीं है। दोनों दूसरे के दास दासी हैं; अतएव जिस धर्म की रक्षा के लिए हम लोग यहाँ तक आये, राज पाट, धन सम्पति, मित्र पुत्र, कलत्र सब छोड़ा अब आज भी उसकी रक्षा के लिए कटिबद्ध रहना हम लोगों का मुख्य कर्तव्य है, अस्तु, अब रोना बन्द कर रोहितकी अन्त्येष्टी का प्रबंध करो।"

शैव्या—नाथ! मैं कफन, कर कहाँ से लाऊँ? मेरे पास तो कुछ भी शेष नहीं रह गया। सिर्फ लज्जा निवारण के लिए एक साड़ी मात्र है, यदि आज्ञा हो तो इसको ही फाड़कर कफन दूँ!

उसकी बातें सुन कर हरिश्चन्द्र बोले,-"चाहे किसी प्रकार हो, पर कफन बिना लिए संस्कार करने कभी नहीं दूँगा।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शैव्या अञ्चल फाड़ना ही चाहती थी कि किसी की कण्ठ ध्वनि सुन कर दम्पति चौंक उठे। जान पड़ा कि कोई हरिश्चन्द्र की बगल में ही कह रहा है,---"ठहरो हरिश्चन्द्र ! तुम्हारा जैसा साधु धर्मपरायण नरपति संसार में कोई दूसरा नहीं पाया। महाराज, क्यों दुःख करते हो, देखो अन्धकार के साथ ही साथ तुम्हारा दुःख रूपी अन्धकार भी दूर होने वाला है। शीघ्रही सुख-सुर्य का उदय हुआ चाहता है। वत्स, उठो आशीर्वाद ग्रहण करो। पुत्री शैव्या ! तुम्हारी जैसी पतिव्रता संसार में कोई नहीं पायी गयी, तुमने अपने ऊपर कष्ट झेल पातिव्रत धर्म का पालन करती हुई संकटावस्था में भी पति का हाथ बटा स्त्री-संसार के सामने एक आदर्श चरित्र रख दिया। स्त्रियाँ तुम्हारे नाम की माला फेर कर सुखी रहेंगी, धैर्य रखो बेटी, अब दम्पति की परीक्षा हो गयी।"

इन शब्दों को सुन दम्पति चकित हो चारों ओर आँख फाड़ २ देखने लगे। उस समय उन्होंने जो दृश्य देखा उस पर विश्वास करने में उन्हें संदेह हो रहा था, पुनः महाराज ने आँखें मल कर देखाः फिर वही दृश्य, वे कुछ देर किंकर्तव्य बिमूढ़ हो रहे।

देखते ही देखते प्राचि ओर अरुणोदय की आभा झाँकी देने लगी, वृक्षों पर विहङ्गों के सुमधुर गान सुनाने लगे। उस मन मोहक समय में महाराज हरिश्चन्द्र ने अपने निकट ही महर्षि विश्वामित्र को शांत भाव से खड़ा पाया। ज्योंही दम्पति की दृष्टि विश्वामित्र जी पर पड़ी त्योहीं वे सिहर गये, दोनों चुपचाप महर्षि की ओर टकटकी लगाये देखते रहे।

फिर महर्षि ने कहना आरम्भ किया,—"वत्स, हरिश्चन्द्र शांत होओ। मैं तुम्हारे कार्य से मोहित हो गया, क्रोधान्ध

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हो कर मैं तुम्हारे साथ युद्ध करने को तैयार हुआ था सही किन्तु इस युद्ध में पूर्ण रूप से तुम्हारी ही विजयवैजयन्ती फहरायी, मुझ को ही अपने मुँह की खानी पड़ी। मुझ को इस युद्ध में तुमसे बहुत शिक्षा मिली, सत्य है, जो जहाँ टेकता है वह वहीं शिक्षा पाता है। मैं सर्वदा से ही कभी सीधे मार्ग में नहीं चला। महर्षि वशिष्ठ से इसी लिए मुझ से युद्ध हुआ था; देवताओं के साथ द्वन्द करके मैं ने इसी कारण महाराज त्रिशंकू को स्वर्ग भेजा था, तुम्हारे साथ भी इसी कारण युद्ध छेड़ा था, किन्तु इस बार मुझको पूर्ण रूप से पराजित होना पड़ा, मैं ने अच्छी तरह से समझ लिया कि जहाँ धर्म है वहीं जय है, जो धर्म की रक्षा करता है उसका अनिष्ट किसी से नहीं हो सकता है। इस लोक में अथवा परलोक में भी किसी से उसका बाल बाँका नहीं हो सकता। हरिश्चन्द्र ! तुम विचार कर देखो, इस युद्ध में किस की अधिक क्षति हुई है, मेरी या तुम्हारी ? यद्यपि तुमने अपना राजकोष तथा अपना सर्वस्व परित्याग किया, किंतु धर्म की रक्षा करने से निर्मल कीर्ति भी तुम्हीं को मिली। मैंने तो राज पाट के फन्दे में फँस कर अपना जप तप, धर्म कर्म सब परित्याग किया। महाराज, तुमको मालूम होगा कि मैं अपनां राज छोड़ अनेक कष्टों का सामना करने बाद क्षत्री से ब्राह्मण हुआँ था, किन्तु तुम्हारा दिया हुआ राज पुनः मेरे ब्रह्मत्व को निकाल लेने को तैयार हुआ; अस्तु, अब आज से तुम अपना राजकोष सम्भालो, अपने राजसिंहासन पर आरूढ़ हो पूर्ववत् प्रजाओं का पालन करो और मुझको इस फन्दे से निकाल कर यश के भागी होओ।"

महाराज हरिश्चन्द्र और महारानी शैव्या महर्षि को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

 Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बिनय पूर्वक प्रणाम कर अश्रु बहाती खड़ी रही, उनको चुप देख पुनः विश्वामित्र जी ने कहा,—"वत्स, चिन्ता न करो मैं जो कह रहा हूँ शीघ्र उसका पालन करो।"

इस बार हरिश्चन्द्र गद गद कण्ठ से बोले,—"नाथ! अब हम लोगों को इस सांत्वना की आवश्यकता ही क्या रही, अब राजकोष पर हम सबों को किसी प्रकार का लोभ नहीं रहा। जिसके लिये राज-सिंहासन ग्रहण करता वह तो चिर निद्रा से निद्रित हो धराशायी हुआ। अब आप मुझको यही आशीर्वाद दें कि जिससे इसी समय संसार से बिदा हो सकूँ यह संसार अब मेरे लिये सूना हो गया।"

विश्वामित्र—वत्स, तुम इस प्रकार अधीर मत हो, मैं तुम्हारे प्रिय रोहित को अभी जीवित कर देता हूँ।"

इतना कहने के बाद महर्षि ने अपने कमण्डलु से मृतसञ्जीवनी जल रोहित की लाश पर छिड़क कर कुमार का हाथ पकड़ बोले,—"वत्स रोहित, अपनी गाढ़ी निद्रा को परित्याग कर देखो, तुम्हारे माता पिता तुम्हारे लिये विह्वल हो रहे हैं।"

ऐसा करते ही रोहित आँख मलता हुआ उठ खड़ा हुआ महारानी शैव्या रोहित को गोद में ले प्रेमपूर्वक मुख चूमने लगी।

पुनः दम्पति महर्षि की चरण धूलि मस्तक से लगा, कर बद्ध हो प्रार्थना पूर्वक बोले,—"महर्षि! इस अधम से जो कुछ अपराध हुआ हो क्षमा करें।"

उस समय राजदम्पति के आनन्दसागर उमड़ रहे थे, वे और कुछ नहीं बोल सके।

इसके बाद महर्षि विश्वामित्र ने उन्हें अयोध्या का राजभार सौंप अपने तपाश्रम का मार्ग लिया। प्रजायें महाराज को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पाकर कृतार्थ हुईं। समय पाकर महाराज ने उस ब्राह्मण और चाण्डालको बुलाकर उचित सत्कार और धन से कृतार्थ किया. ब्राह्मण पुत्र गंगाधर से शैव्या ने कहा,--"पण्डितवर, आप मुझे धर्म ग्रन्थों की शिक्षा देने की कृपा करेंगे।"

गंगाधर शैव्या की बातें सुनकर बड़ा लज्जित और भयभीत हुआ, कभी लौट कर पुनः अयोध्या की ओर नहीं आया, किन्तु उसी दिनसे उसमें परिवर्तन होना आरम्भ हुआ और बहुत शीघ्र हीं सुधर गया।

समाप्त

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सती-सतीत्व

"सती का सतीत्व" अहा! पाठक, कितना भारी महत्त्व पूर्ण शब्द है? क्या आप देखना चाहते हैं? कि सती का सतीत्त्व क्या है, कैसा होता है? क्या आप अपनी कन्याओं, स्त्रियों बहिनों को सती-सतीत्व का पाठ पढ़ा उन्हें पातिव्रत धर्म क्या है? यह सीखाना चाहते हैं? यदि हाँ तो इस पुस्तक को आज ही मंगा कर पढ़िये, पढ़ाइये और पतिधर्म के दिव्य-प्रकाश से अपनी भावी माताओं और बहिनों का अन्तःकरण उज्ज्वल बनाइये। अनेक सुन्दर चित्रों सहित मूल्य १=) १॥)

आदर्श--पत्नी

आदर्श पत्नी. का मिलना भी एक बड़े ही भाग्य की बात है। जिस घर में आदर्श पत्नी का निवास, है वह घर स्वर्ग तुल्य है, इस पुस्तक में उन्हीं आदर्शस्वरूपा देवी द्रौपदी की जीवन-कथा लिखी गई है। द्रौपदी की अटल पतिभक्ति, बिशुद्ध प्रेम धर्मपरायणता, सहिष्णुता, आदि सभी मार्के की हैं। बाल वृद्ध, बनिता सभी के लिए यह पुस्तक उपादेय है मूल्य १)

शर्म्मिष्ठा

इस पौराणिक उपन्यास में शुक्राचार्य की कन्या देवयानी और दैत्यराजकन्या शर्म्मिष्ठा का ययाती के प्रति अतीव सुन्दर प्रेम दिखाया गया है। गर्ब्बित प्रेम का परिणाम और सरल प्रेम का अंजाम इसमें बहुत ही उच्च भावों के साथ वर्णित है। इसे पढ़ कर स्त्रियाँ पातिव्रत धर्मका सबक सीखेंगी। गर्ब्बिनी अपने गर्व्व को खर्व कर सकेंगी और प्रेमदुखिनी अपने दुख को भूल धर्म धारण करने में समर्थ होंगी। मूल्य सुन्दर चित्रों सहित सजिल्द १) सादी ॥।)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पत्नी प्रभाव

पाठक! यदि आप पत्नी प्रभाव की महिमा जानना चाहते हैं, यदि सती के सतीत्व-बल का अद्‌भूत दिग्दर्शन करना चाहते हैं, पतिव्रता स्त्री के सतीत्व में कितनी शक्ति होती है, इत्यादि ५ उत्तम बातों को जानना चाहते हैं, तो, हमारी "रत्न माला" में प्रकाशित "पत्नी-प्रभाव" नाम की पुस्तक मँगा कर पढ़िये; अपनी धर्म पत्नी को पढ़ाइये, भावी मातायें, तथा बहिनों को उपहार दीजिये; फिर देखिये कि पत्नीप्रभाव का प्रभाव प्रथम ही उनके हृदय पर कैसा पड़ता है? इसमें शिव के अंश से उत्पन्न महा पराक्रमी उद्दण्ड दैत्यराज जालन्धर की सतीशिरोमणी पतिप्राणा। धर्मपत्नी बिंदा का चरित्रचित्रण किया गया है पत्नीप्रभाव की अद्‌भूत शक्ति दिखा कर पाठकों के आगे उसकी मनोहर शिक्षा का ज्वलंत उदाहरण उपस्थित किया गया है, मूल्य सचित्र का १)

चिन्ता

दमयंती, सीता, सावित्री आदि सती देवियों की पुण्यकथा जगत में विख्यात है, किन्तु चिन्तादेवी की कहानी अभी लोगों में अज्ञात है, पवित्र सद्‌गुणों के पवित्र भावों से परिपूर्ण यह चिन्तादेवी की चरित्रकथा बहुत ही विमल और बालक बालिकाओं के पढ़ने योग्य सरल भाषा में वर्णन की गई है, इस पुस्तक को खरीद कर माता, बहन और कन्याओं को ...पनी प्रिय पत्नी को प्रेम और पति-भक्ति का ...हेनाइये। मूल्य रेशमी जिल्द १) सादी ॥)

SPS
891.433 V 72 A
10509

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सतीसतीत्व के एक चित्र का नमूना

सुन्दर छपाई के साथ अनेक रंग बिरंगे चित्रों सहित स्त्री शिक्षा
की सर्वश्रेष्ठ अति उत्तम पुस्तक मूल्य १) रेशमी जिल्द १॥।)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

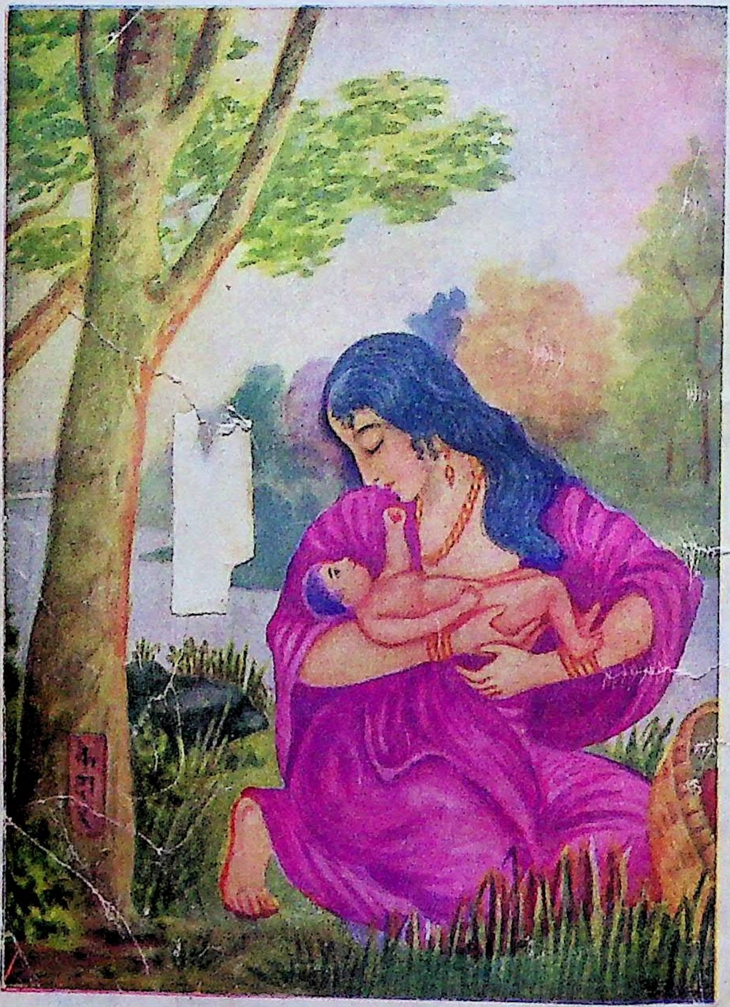

क वीर रसकी अतिउत्तम शिक्षापूर्ण नवीन पुस्तक । आईवेरी कागज
पर सुन्दर छपाई के साथ सज्जित । ५) पता— [illegible] बहार-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE